चौथी दुनिया

मूल्य 20 रुपये

दिल्ली रविवार 23 अगस्त 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

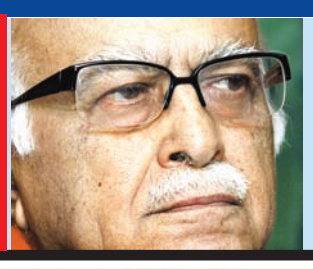

3 आडवाणी जी को क्या हो गया है?

5 ख़ून से सनी सोनार बांग्ला की धरती

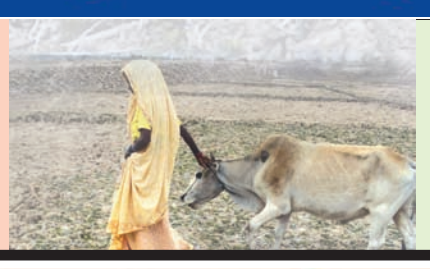

9 दीपावली पर दीप नहीं, दिल जलेंगे

हमें मौत दे दीजिए मुख्यमंत्री जी

शमीम अहमद

■ भूख से परेशान बुंदेलखंड वालों ने मांगी ख़ुदकुशी की इजाज़त

सेवा में

माननीया मुख्यमंत्री जी,

उत्तर प्रदेश सरकार,

लखनऊ (उत्तर प्रदेश).

...हम सभी किसान भाई का,निवासी ब्लॉक बबीना, ग्राम-गुवावली, जनपद-झांसी, शपथपूर्वक निवेदन यह है कि हमारे गांव में वर्षा न होने से खेत सूख गए हैं, फ़सल नहीं हो पाई है. कई परिवार भूख की कगार पर हैं. अभी तक हम लोगों को कोई भी सूखा राहत प्राप्त नहीं हुई है. ऐसी स्थिति में हम लोगों ने प्रशासन से राहत की मांग की है, किंतु उपेक्षा देखने को मिली है. ऐसी स्थिति में हम निम्न हस्ताक्षरकर्ता किसान भाई और पूर्व प्रधान चंदन सिंह अपनी जीवन लीला समाप्त करने तक को तैयार हैं, जिसकी ज़िम्मेदारी प्रशासन की होगी. हमारी मदद की जाए.

प्रार्थीगण

चंदन सिंह

रामदास केवट

राम प्रकाश

हीरालाल

देशराज

जगदीश कुशवाहा

राम कुमार

बुंदेलखंड में पड़े सूखे और भूख के कारण अब किसानों में आत्महत्याओं का दौर शुरू हो गया है. पिछले दो हफ़्तों में भुखमरी के शिकार चार किसानों ने आत्महत्या करके और आने वाले चंद दिनों में डेढ़ दर्जन किसानों ने आत्महत्या करने की घोषणा करके केंद्र और प्रदेश की सरकारों को कठघरे में खड़ा कर दिया है. आत्महत्याओं वाले इलाक़ों से इस समय तीन नेता प्रदेश सरकार में तो एक केंद्र सरकार में मंत्री हैं. विडंबना देखिए कि यहां के किसान फिर भी प्रशासन द्वारा अपेक्षा और उत्पीड़न से परेशान हैं. सूखे को लेकर मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की सरकारों ने केंद्र के ख़िलाफ़ हाथ मिला लिया है. इन सबका असर यह हुआ है कि बुंदेलखंड के सूखाग्रस्त इलाक़ों में अफसरों ने किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता देने से मनाही कर दी है. यानी केंद्र और राज्य सरकारों के बीच चल रही राजनीतिक लुका-छिपी का असर सीधे किसानों पर पड़ रहा है. हर तरफ़ से छल होता देख किसान हताश हो गए हैं. इतने कि आत्महत्या जैसे क़दम उठाने लगे हैं. सूखा, क़र्ज़ और भूख से परेशान होकर 29 जुलाई को ललितपुर जनपद के ग्राम खिंतवास में 75 वर्षीय किसान मुन्नीलाल लोहार ने आत्महत्या कर ली. इसके बाद चार अगस्त को बैरवारा के 28 वर्षीय किसान गोविंद और नौ अगस्त को झांसी के टहरौली तहसील के 75 वर्षीय किसान क्षमाधर यादव ने भी आत्महत्या कर केंद्र और प्रदेश सरकारों के मुंह पर सूखे की हक़ीक़त का तमाचा जड़ दिया.

सरकारों तक अपनी आवाज़ और आर्थिक मदद की गुहार कर रहे झांसी जनपद के बबीना ब्लॉक के गुवावली गांव के ही डेढ़ दर्जन किसानों ने प्रशासन पर उपेक्षा का आरोप लगाते हुए जल्द ही परिवार सहित आत्महत्या करने की शपथ ली है. इस सिलसिले में उन्होंने नौ अगस्त को एक हलफनामा तैयार कर उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती को भेज दिया है. इसकी सूचना उन्होंने स्थानीय प्रशासन के अलावा कांग्रेस के महासचिव राहुल गांधी और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को भी दे दी है. इन किसानों के पास एक हज़ार एकड़ से अधिक कृषि भूमि है, जिन पर इस वक़्त मूंग और मक्के की फ़सलें खड़ी हैं. बाक़ी फ़सलों में मूंगफली, सोयाबीन, तिली की फ़सल है जो पानी न मिलने के कारण बुरी तरह ख़त्म हो चुकी है. सपरिवार आत्महत्या करने की घोषणा करने वालों में ग्राम गुवावली, बबीना के पूर्व प्रधान चंदन सिंह पुत्र पंचम सिंह (49 वर्षीय), ग्राम ख़ास बबीना के 30 वर्षीय रामदास पुत्र बैजनाथ, ग्राम गुवावली के 62 वर्षीय कमल पुत्र स्व. हल्कू ढीमर, ग्राम गुवावली के ही वालिकदास पुत्र राज्जू, लल्लू कोरी पुत्र पच्चू, नंदराम पुत्र धनीराम, रामदास केवट पुत्र कमल, जगदीश पुत्र बंशी-बबीना, 45 वर्षीय रामप्रकाश कुशवाहा पुत्र रज्जू-ग्राम रसीना, हीरा लाल कुशवाहा पुत्र स्व. मोतीलाल मथनपुरा, 56 वर्षीय देशराज पुत्र तिजू, 32 वर्षीय रामकुमार यादव पुत्र पंचम सिंह शामिल हैं. आत्महत्या करने की घोषणा करने वाले इन किसानों की फ़सल पानी न मिलने के कारण लगभग पूरी तरह चौपट हो रही है. किसानों ने सरकार से मुफ़्त बिजली और खेतों को पानी देने की गुहार लगाई है. खेतों में खड़ी मूंगफली, सोयाबीन, तिल, मूंग, उड़द, मक्के की क़रीब 60 से 70 प्रतिशत फ़सल सूखती देख किसानों को ख़ून के आंसू रोना पड़ रहा है. मूंगफली की क़रीब 80 प्रतिशत खेती ख़त्म हो चुकी है. फ़सलों को बचाने के लिए सरकारों की खुली जंग और प्रशासनिक अमले के खड़े हाथ देख किसान आत्महत्या के लिए मजबूर हो रहे हैं. इससे केंद्र और दोनों संबद्ध राज्य सरकारों के ख़िलाफ़ आक्रोश बढ़ गया है. सूखे की स्थिति को देख किसानों को सूदखोर महाजनों और बैंकों ने किसी भी प्रकार का क़र्ज़ देने से इंकार कर दिया है. किसानों की इस भयावह स्थिति को देख केंद्र और प्रदेश सरकार अभी तक कोई ठोस योजना तैयार नहीं कर पाई है, किसानों के परिवार को भरपेट भोजन तो दूर पीने का पानी तक मुहैया नहीं हो पा रहा है. अपनी स्थिति देख पिछले एक माह में बुंदेलखंड के दस हज़ार से अधिक परिवार अपना घर छोड़कर अन्य क्षेत्रों की और पलायन कर चुके हैं. इन किसानों के पास मौजूद जानवरों में क़रीब एक हज़ार मौत के मुंह में जा चुके हैं, जबकि हज़ारों कसाइयों के शिकार हो गए हैं. स्थिति इतनी भयावह हो गई है कि प्रशासनिक अमला भी इनके गांवों में जाने से कतरा रहा है, जबकि नेता राज्य मुख्यालयों में दुबके बैठे हैं और किसान बराबर मौत को गले लगा रहा है. किसानों का आरोप है कि 2007 में पड़े भयंकर सूखे से भारी क़र्ज़ में फंस गए उनके परिवार अभी तक उस संकट से ही नहीं निकल पाए थे. ऐसे में इस साल के सूखे ने उन्हें भुखमरी के कगार पर ला दिया है. बबीना के इस क्षेत्र में दौ सौ कुंए हैं, जिनमें से तीन से पांच कुओं में पानी सड़ गया है, जो न तो खेती लायक है और न ही पीने के . इस क्षेत्र में 12 गांव हैं. इस क्षेत्र में क़रीब 10 हज़ार एकड़ भूमि उपजाऊ है. इसी क्षेत्र से उत्तर प्रदेश सरकार में अंबेडकर ग्राम विकास मंत्री रतनलाल अहिरवार और केंद्र में प्रदीप जैन आदित्य ग्रामीण विकास राज्यमंत्री हैं. इन मंत्रियों के पास सूखाग्रस्त क्षेत्रों के बारे में पूरी जानकारी है, पर सरकारों के बीच खिंची तलवारों को देख कोई भी मंत्री आगे नहीं बढ़ रहा है.

बहरहाल, सूखे ने एक बार फिर बुंदेलखंड को झकझोर कर रख दिया है. सूखे से यहां की अर्थव्यवस्था ही नहीं, शिक्षा भी प्रभावित हुई है. ग़रीबी और बेरोज़गारी भी लोगों के गले को सुखाने लगी है. बुंदेलखंड के शिक्षा क्षेत्र तक में भूचाल आ गया है. छात्रों को इस साल का वज़ीफा तक नहीं मिला है. इतना ही नहीं, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय के लगभग दस हज़ार छात्रों को अभी तक अंक तालिकाएं नहीं दी गई हैं, जबकि नया सत्र भी शुरू हो चुका है.

feedback@chauthiduniya.com

बुंदेलखंड में नरेगा भी नहीं रोक पा रहा मज़दूरों को

सुरेंद्र अग्निहोत्री

बुंदेलखंड की जनता तय नहीं कर पा रही है कि वह ख़ुश हो या दुखी. इस क्षेत्र के विकास के लिए राहुल गांधी की प्रतिबद्धता देख यहां के लोग ख़ुश थे. उन्हें अंतरराज्य स्वतंत्र बुंदेलखंड विकास प्राधिकरण के गठन की उम्मीद बंधी ही थी कि मुख्यमंत्री मायावती ने उत्तर प्रदेश विधानसभा में प्राधिकरण के विरोध में प्रस्ताव पारित करा दिया. इस दौरान बसपा के बुंदेलखंडीय विधायकों के मूकदर्शक बने रहने से लोगों में गहरा आक्रोश है. बुंदेलखंड राज्य की समर्थक बसपा के इस नए रुख़ से उसकी कलई खुल गई है. यहां के लोग बसपा द्वारा ठगा महसूस कर रहे हैं. ऐसा ही हाल बुंदेलखंड के मध्य प्रदेश वाले हिस्से में देखने को मिल रहा है. छोटे राज्यों की समर्थक भाजपा द्वारा बुंदेलखंडीय अरमानों पर पानी फेरने की कोशिश भले ही सियासी जंग का हिस्सा हो, लेकिन नुक़सान तो यहां की जनता को ही हो रहा है.

बुंदेलखंड के वाशिंदे और प्रदेश के ग्राम्य विकास मंत्री दद्दू प्रसाद बताते है कि बांदा, चित्रकूट, महोबा, ललितपुर, हमीरपुर, झांसी, जालौन जनपदों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (नरेगा) में उपलब्ध धनराशि से पारंपरिक व पुराने जलस्रोतों के पुनर्निर्माण के साथ-साथ नए तालाब, चैकडैम एवं बंधी निर्माण व निजी कृषि भूमि पर जल संचयन के लिए खेतु, तालाब के निर्माण को प्रथम वरीयता दी जाएगी. लेकिन मंत्री के वादों के आगे नौकरशाही के फ़रमान ज़्यादा ताक़तवर नज़र आ रहे हैं. बुंदेलखंड में नरेगा के नाम पर मज़दूरों के साथ जैसी लूट-खसोट हो रही है, मज़दूरों का पलायन उसी का परिणाम है. बुंदेलखंड की 48 प्रतिशत आबादी पलायन कर गई है. इसकी मुख्य वजह यहां व्याप्त सूखा, बेरोज़गारी और भुखमरी हैं. यह पलायन राज्य सरकार द्वारा पैकेज दिए जाने के बावजूद जारी है. उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और केंद्र में तीन अलग-अलग दलों की सरकारें होने के कारण बुंदेलखंड को पर्याप्त दानापानी नहीं मिल पा रहा है. बिजली की कमी, पानी का घोर संकट और सिंचाई सुविधा के कृत्रिम अभाव से बुंदेली धरा सूखी पड़ी है. इनमें दरारें पड़ गई हैं. पपड़ियां जम गई हैं. ताल तलैये सूख गए हैं.

ललितपुर जनपद के मडावरा ब्लाक की 51 ग्राम पंचायतों में लगभग 50 प्रतिशत दलित-आदिवासी ग़रीबी का जीवन जीने को मजबूर हैं. एक तरफ़ आजीविका के लिए स्थायी व्यवस्था न होने से ग़रीब

(शेष पृष्ठ 2 पर)

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

वफ़ा की क़ीमत

वफ़ादारी बाबुओं की विशेषता भले हो, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि इससे हर बार फ़ायदा ही हो. एक उदाहरण ऐसा भी है, जिसमें इसके चक्कर में भारत–अमेरिका के बीच एक करार ही पटरी से उतर गया.

कहा जा रहा है कि अमेरिकियों ने एक भारतीय मंत्री के कमरे में हो रही हलचलों की पूरी जानकारी पाने की व्यवस्था कर रखी थी. हालांकि यह ख़ुलासा ही अपने आप में हंगामाखेज है और इसको न माने जाने की पूरी संभावना है. वैसे बताया जा रहा है कि वह मंत्री साहब अपने कमरे में निजी पलों में बाबुओं के साथ दूसरे पक्ष के बारे में कुछ अशिष्ट और कटु बातें कहते धर लिए गए. जब करार संबंधी वह बातचीत अचानक ही रुक गई, तब किसी ने कुछ नहीं कहा. ख़ैर मंत्री साहब के प्रति बाबुओं की वफ़ादारी क़ाबिल–ए–तारीफ़ तो है ही. अब इसमें कोई बड़ा आश्चर्य नहीं है कि बातचीत बिना नतीजे ख़त्म हो गई.

लेकिन अब अमेरिका की ओर से नाराज़गी भरी एक चिट्ठी आ गई है, जिसमें बिना ज़्यादा विस्तार में गए इसकी वजह भी बताई गई है. अब इस की गाज कुछ बाबुओं पर भी गिरती है या नहीं, कह नहीं सकते. अभी तो सब इंतज़ार में हैं.

राव की राह नहीं आसान

भारत की नई विदेश सचिव निरुपमा राव ने ऐसे समय में पद संभाला है, जब आशंका जताई जा रही है कि भारत की विदेश नीति अब विदेश मंत्रालय के बजाय पीएमओ के मुताबिक चल रही है.

भारत–पाक साझा बयान में बलूचिस्तान का ज़िक्र इसी बदलाव का नतीजा माना जा रहा है. हालांकि राव की नियुक्ति की घोषणा कुछ समय पहले ही हो गई थी. लेकिन अभी तक उनसे पहले विदेश सचिव रहे शिव शंकर मेनन की आगे की ज़िम्मेदारी तय नहीं हुई है. लगता तो यही है कि वह भी श्याम सरन, एस के लांबा और चिन्मय गरेख़ान की तरह ही पीएमओ में विशेष दूत की भूमिका में नज़र आएंगे. हालांकि अभी वह साझा बयान पर अपनी भूमिका को लेकर भूल सुधार में जुटे हुए हैं. बहरहाल, यह तो साफ नहीं है कि विदेश मंत्रालय के बाबू पीएमओ के विदेश नीति के काम को कैसे देखते हैं, लेकिन इतना तो तय है कि निरुपमा राव को दिखाना होगा कि उनका मंत्रालय और उसके बाबू दोनों अभी अहमियत रखते हैं.

अंजुम ए ज़ैदी

साउथ ब्लॉक

रीना बन सकती हैं निदेशक

रीना साह (आईए एंड एएस, 1994) की नियुक्ति कृषि एवं सहकारिता विभाग में निदेशक के पद पर हो सकती है. वह गुरिंदर सिंह (आईआरएएस, 1989) का स्थान लेंगी. केंद्र में उनकी प्रतिनियुक्ति हाल ही में पूरी हुई है. अब उन्हें जल्द ही नियुक्ति पाने की उम्मीद है.

विदेश मंत्रालय पहुंचे केएन श्रीवास्तव

कर्नाटक काडर के 1978 बैच के आईएएस अधिकारी केएन श्रीवास्तव वर्तमान में पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक के पद पर हैं. अब उनका तबादला विदेश मंत्रालय में अतिरिक्त सचिव के रूप में कर दिया गया है. वह यह नई ज़िम्मेदारी जल्द ही संभाल लेंगे.

ईएससीआई का अगला महानिदेशक कौन?

टी सी चतुर्वेदी के स्थान पर ईएससीआई (इंप्लॉयज स्टेट इंश्योरेंस कॉरपोरेशन) का अगला महानिदेशक कौन होगा? हाल ही में उनकी नियुक्ति श्रम मंत्रालय में सचिव के पद पर हुई है. अब तक मिली ख़बरों के मुताबिक महानिदेशक पद की दौड़ में चार अधिकारी शामिल हैं.

परवान चढ़ रही हैं असरकारी होने की हसरतें

कटनी और आसपास के क्षेत्र में सरकारी तंत्र के दायरे से परे जनतंत्र को असरकारी स्वरूप प्रदान करने की मुहिम ज़ोर पकड़ रही है. क्षेत्रीय स्तर पर आम विकास की दिशा एवं प्रक्रिया के अनुरूप शुरू हुई मुट्ठी भर कार्यकर्ताओं की अर्से से जारी कोशिशों ने अब अपना असर दिखाना आरंभ कर दिया है. बड़ी तादाद में संस्थाएं ही नहीं, आम नागरिक भी इससे जुड़ने की आकांक्षा ज़ाहिर करने लगे हैं.

यही कारण है कि काफी पहले शुरू की गई *स्थानीय लोकतांत्रिक एवं विकास प्रक्रिया में नागरिक हस्तक्षेप की पहल* की ख़ातिर कटनी और पड़ोस के जबलपुर ज़िले की अनगिनत स्वैच्छिक सामाजिक संस्थाएं, नागरिक समूहों, स्वतंत्र कार्यकर्ताओं और पत्रकारों ने एक अलग मोर्चा बना लिया है. *फेडरेशन ऑफ वोलेंट्री एफर्ट्स* नाम से यह मोर्चा बीती 20 और 21 जुलाई को हुई बैठक में बनाया गया. यह विवेकानंद सोसायटी फॉर सोशल अपलिफ्टमेंट (माधवनगर), मानव जीवन विकास समिति (बिजौरी), नाद गुंजन कला परिषद (सभी ज़िला कटनी) एवं नवरचना समाजसेवी संस्था और क़दम संस्था (ज़िला जबलपुर) के संयुक्त प्रयास से बन पाया है. मोर्चे का मानना है कि सरकार चाहे केंद्र की हो या राज्य की, दोनों ही भूमंडलीकरण, निजीकरण आदि के नाम पर बाज़ारवादी व्यवस्था को बढ़ावा दे रही हैं. इससे देश में सदियों से चली आ रही स्वाबलंबी समाज–व्यवस्था को नुक़सान पहुंच रहा है. यह सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर रही है. इसकी मुख्य वजह यह है कि हमारी केंद्र और राज्य की सरकारें वर्तमान में जिन ताक़तों द्वारा संचालित हो रही हैं, जिस विकास प्रक्रिया को हम पर थोपा जा रहा है, उसमें मनुष्य, मनुष्यता और समाज जैसी किसी अवधारणा के लिए कोई जगह नहीं रह गई है. यहां सिर्फ़ बाज़ार और उपभोक्ता की उपयोगिता ही शेष रह गई है. ऐसी स्थितियां हमारे देश और उसकी स्वाबलंबी समाज–व्यवस्था के लिए बेहद घातक हैं. समय रहते यदि इस ओर ध्यान देकर आवश्यक क़दम नहीं उठाए गए तो आने वाले समय में इसे ठीक करना असंभव हो जाएगा.

इस तरह की पृष्ठभूमि के तहत प्रारंभ किए गए उपक्रम में देश भर में सक्रिय समाजसेवी, अनेक जानी–मानी हस्तियों, जनसंगठन प्रमुखों, सामाजिक सरोकारों से प्रतिबद्ध पत्रकारों, रंगकर्मियों आदि के साथ संपर्क, संवाद स्थापित कर उन्हें कटनी–जबलपुर में शुरू हुई इस मुहिम से जुड़ने की अपील की जा रही है. इस कड़ी में वरिष्ठ गांधीवादी कार्यकर्ता और केंद्रीय मुख्य सूचना आयुक्त डॉ. वजाहत हबीबुल्लाह, मैग्सेसे पुरस्कार विजेता और सूचना अधिकार कार्यकर्ता अरविंद केजरीवाल का पूर्व में ही कटनी आगमन हो चुका है. आज़ादी बचाओ आंदोलन के सचिव मनोज त्यागी और स्वराज विद्यापीठ इलाहाबाद की ओर से प्रो. कृष्ण स्वरूप आनंदी भी पिछले दिनों ही ज़िले का दो दिवसीय दौरा कर चुके हैं. जनसंगठन एकता परिषद के प्रमुख सुप्रसिद्ध गांधीवादी कार्यकर्ता राजगोपाल पी. व्ही. ने गत दिनों नवगठित मोर्चे के प्रति समर्थन और सहयोग का आश्वासन दिया है. अब 29–30 अगस्त को आज़ादी बचाओ आंदोलन की ओर से स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय लोगों के मालिकाना हक़ विषय पर दो दिवसीय कार्यशाला आयोजित की जा रही है. इसमें अनेक विशेषज्ञ भाग लेंगे. आज़ादी बचाओ आंदोलन के प्रमुख प्रोफेसर बनवारी लाल शर्मा, सुप्रीम कोर्ट में जनहित मामलों में पैरवी के लिए प्रसिद्ध काननूविद प्रशांत भूषण ने भी जल्द ही कटनी पहुंच समाजसेवियों के इस साझे मोर्चे के साथ शिरकत करने की सहमति दी है. जबकि देश के वरिष्ठतम पत्रकार कुलदीप नैयर ने अगले माह यानी सितंबर में तीन–चार दिन के लिए कटनी आने का आमंत्रण स्वीकार कर लिया है.

ग़ौरतलब है कि कटनी देश के केंद्रीय भू–भाग में न सिर्फ़ स्थित है, बल्कि अपने भूगर्भ में अकूत बेशक़ीमती खनिज संपदाओं को भी समेटे हुए है. बावजूद इसके यह अर्से से शासन द्वारा उपेक्षित और निजी क्षेत्र के खनिज उद्योग व व्यवसाय आधारित संस्थानों द्वारा बुरी तरह दोहन व शोषण का शिकार बन रहा है. अब उम्मीद जताई जा रही है कि समाजसेवियों के नवगठित मोर्चे से क्षेत्र में जागरूकता बढ़ेगी और हालात बदलेंगे.

इस दिशा में शुरुआत भी हो चुकी है. नवगठित फेडरेशन ने कटनी जिले के आदिवासी बहुल ढीमरखेड़ा विकासखंड स्थित ग्राम मुखास में कुपोषण एवं शासकीय लापरवाही से गत दिसंबर में हुई छह आदिवासी बच्चों की मौत की जांच का ज़िम्मा अपने हाथ में लिया है. फेडरेशन इस घटना पर असंतोष जताने वाले ग्रामीणों के अलावा इलाक़े में काम करने वाली एक सामाजिक संस्था–जय भारती शिक्षा केंद्र–के सदस्यों पर नाहक आपराधिक प्रकरण थोपे जाने वाले मामले को भी उठाएगा. इसी तरह राज्य की भाजपा सरकार द्वारा संरक्षित कुछ स्वयंभू हिंदूवादी संगठनों द्वारा एक मिशनरी संस्था– ब्लैसिंग यूथ मिशन–के विरुद्ध दलित बच्चों के धर्मांतरण का शिगूफा खड़ा कर क्षेत्र में सांप्रदायिक तनाव फैलाने के मामले की जांच भी फेडरेशन की ओर से बनाई गई नागरिक जांच समिति ने शुरू कर दी है.

अरविन्द वर्मा

feedback@chauthiduniya.com

बुंदेलखंड में नरेगा भी नहीं रोक पा रहा मज़दूरों को

पृष्ठ 1 का शेष

पलायन को मजबूर हैं, वहीं इनके हक़–हुकूक भी सामंतशाही गठजोड़ के कारण नहीं मिल पा रहे हैं. सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की लूट–खसोट का सिलसिला दलित नेतृत्व की लोकप्रिय सरकार में भी समाप्त नहीं हो सका. भ्रष्टाचार को छिपाने के लिए जॉबकार्डों के पन्ने फाड़कर ग़ायब करने तथा अमीरों को बी.पी.एल. कार्ड बनाने के लिए दस्तावेज़ों में ख़ुदबुर्द करने में सरकारी मशीनरी पारंगत है. सरकारी नुमाइंदों के आश्वासनों से ग़रीब वर्षों तक इंतज़ार करता रह जाता है, उसे सुविधाएं कभी भी नहीं मिलती जिनका वह हक़दार है.

मडावरा में पांच सौ परिवारों को आवास सुविधा मुहैया कराने के उद्देश्य से महामाया आवास के लिए दो करोड़ रुपये गत वर्ष दिए गए थे. लेकिन वह योजना भी अधर में है. कई गांवों में आवास के लाभार्थियों से 5000 रुपये तक का कमीशन लिया गया है. दिदौनियां, पारौल, धौरीसागर, सकरा, बम्हौरीखुर्द, कुर्रट जैसे कुछ गांवों से शिकायतें आईं तो उच्चाधिकारियों ने मामला रफा–दफा कर दिया. डी.डी.ओ. ने स्थानीय कर्मचारियों के विरुद्ध कार्रवाई की चेतवानी दी है, पर कहीं कोई प्रभाव नहीं पड़ा.

भूमि माप और क़ब्ज़ा दिलाओ अभियान चला. इसमें कुछ लोगों को क़ब्ज़ा मिला, पर सैकड़ों दलित–आदिवासी परिवार दबंगों के सामने, चालाक लेखपालों की कुटिल चाल में फंस क़ब्ज़े से वंचित रह गए. शासन की मंशा के अनुरूप ललितपुर में पट्टेदारों को क़ब्ज़ा नहीं मिल सका है. उकौना ग्राम पंचायत के 15 सहरिया अधिवासी कलुवा, लाले, मोती, खिलान, गेंदिया, रूपन, कोमल आदि क़ब्ज़े से वंचित रह गए हैं. अगर इन 15 परिवारों को 30 एकड़ ज़मीन पर क़ब्ज़ा मिल जाता तो ग़रीबी रेखा से ऊपर उठाने का क्रम प्रारंभ हो जाता.

नरेगा के तहत गरीबों की जिंदगी में परिवर्तन लाने तथा पेट भर रोटी की प्राथमिक व्यवस्था करने के लिए ग्राम पंचायतों में एक काम चलते रहना अनिवार्य है, किंतु गांव की गुटबंदी और सरकारी पेशबंदी के बीच बंदरबांट जारी है. ब्लॉक मडावरा के सौंरई गांव में हरप्रसाद प्रधान के खेत में कूप निर्माण कार्य कराया गया है. इसमें लगभग चार दर्जन मज़दूरों ने काम किया, जिनमें से नन्ने भाई अहिरवार 15 दिन, रामा अहिरवार 25 दिन, चिमना अहिरवार 15 दिन, गेंदारानी अहिवार 24 दिन, ननुवा अहिरवार 15 दिन, बालकिशन 15 दिन, श्यामबाई 25 दिन, गनपत 35 दिन, प्यारी बहू 40 दिन, शिवकुमारी 45 दिन, शुगर एवं गोरा एवं पिसनारी बीट में वृक्षारोपण के तहत लगभग 50 मज़दूरों ने काम किया है. उन्हें एक माह बीतने के बाद भी मज़दूरी नहीं दी गई है. मजदूर मल्लन, रेखा, गयादीन, सुखलाल, श्रीराम, लक्ष्मण, जंडू, राजू, रामा, रामलाल, मंझली बहू, लल्लू,

10 दिन, नन्ने भाई 20 दिन की कुल 28, 400 रुपये की मज़दूरी का आज तक भुगतान नहीं किया गया है. ग्राम विकास अधिकारी मज़दूरी का सारा पैसा हड़प रहा है. 10 फ़र्ज़ी लोगों के नाम काम में शामिल कर जितना बजट था, वह पूरा पैसा भी निकाला जा चुका है.

इसी तरह वन विभाग मडावरा रेंज द्वारा पिसनारी रामचरन, बारेलाल, गरई बहू, तंसू, नरेश, गुड्डी, हरपाल, गोकल, सरू, रामदयाल, देवी, बलीराम, घनश्याम, सीताराम, मुल्ला, महेंद्र, महेश सभी सहरिया जाति और राजूसिंह लोधी सहित लगभग 32 लोगों की लगभग 29,800 रुपये की मज़दूरी शेष है.

पिसनारी गांव में भ्रष्टाचार को छिपाने के लिए पंचायत मित्र द्वारा जॉबकार्डों के पेज फाड़ने की जानकारी ग्रामीणों ने इस संवाददाता को दी है. आरोप है कि गांव के ही रघुराज पुत्र बलवंत सिंह (कार्ड नं.–219), रामसिंह पुत्र मुलायम (कार्ड नं.– 443), हन्दू पुत्र तिजई (कार्ड नं0– 262), दलीपा पुत्र दौलता सहरिया (कार्ड नं0– 229) सहित लगभग 15 जॉबकार्डों के पेज पंचायत मित्र द्वारा फाड़ दिए गए हैं. ग्रामीणों का कहना है कि इन जॉबकार्डों में सौ दिनों के काम पूरे हो चुके थे और ये एक साल उपयोग में नहीं लाए जा सकते थे, इसलिए पेज फाड़कर पुन: उपयोग में लाने की नियत से ऐसा किया गया. ग्रामीणों की शिकायत पर बी.डी.ओ. ने मौक़े पर पहुंचकर सारे मामले की जांच की और फाड़े गए जॉबकार्ड अपने पास ले लिए. उन्होंने दोषी के विरुद्ध एफ.आई.आर. दर्ज़ कराने के निर्देश दिए हैं. मडावरा के पिसनारी गांव में एक दर्जन से अधिक जॉबकार्डों के पन्ने फाड़ जाने की जानकारी राज्य रोज़गार गारंटी परिषद सदस्य वासुदेव ने भी दी है.

उधर, ग्राम पंचायत जलंधर में नरेगा के तहत दो कूप बनाए गए. 50–50 मज़दूरों ने 20–20 दिन काम किया है, पर अभी तक मज़दूरी नहीं दी गई है. मज़दूर वंशीलाल, करनलाल, जीराबल, जालम, विनोद कुमार आदि ने बताया कि कार्य की धनरशि सचिव एवं प्रधान ने मिलकर निकाल ली है. कुआं भी अधूरा पड़ा है.

मडावरा ब्लाक के प्राइमरी एवं जूनियर विद्यालयों की स्थिति सबसे ख़राब है. विद्यालयों में बच्चों के अनुपात में शिक्षक नहीं हैं बच्चों का भविष्य चौपट हो रहा है. भौंती गांव के जूनियर हाईस्कूल में ताला लटक रहा है. आज़ादी के 60 सालों में मडावरा ब्लॉक सिर्फ़ 40 प्रतिशत ही साक्षरता दर प्राप्त कर सका है. मिड–डे मील में प्रधानों ने बच्चों के मुंह का कौर छीन लिया. अधिकांश स्कूलों के गैस सिलेंडर प्रधानों के घरों में रखे हैं. बेशिक शिक्षा अधिकारी ने दो दर्जन से अधिक ग्राम प्रधानों की रिकबरी के आदेश दिए हैं.

उल्लेखनीय है कि 2001 की जनगणना के अनुसार बुंदेलखंड (उप्र व मप्र मिला कर) के 21 ज़िलों की आबादी दो करोड़ 81 लाख, 14 हज़ार 972 थी. पिछले चार वर्षों में यह घटकर एक करोड़, 34 लाख, 73 हज़ार 37 हो गई है. सबसे अधिक प्रभावित छतरपुर पर पड़ा है. इस ज़िले की कुल आबादी 14 लाख 74 हज़ार 633 में से सात लाख 66 हज़ार 807 लोग ग़ायब हैं. हालत यह है कि कई गांव उजड़ गए हैं. जो लोग बचे हैं, उनमें अधिकतर बुज़ुर्ग हैं. टीकमगढ़ के 12 लाख तीन हज़ार 533 में से पांच लाख 89 हज़ार 731 एवं बांदा के 15 लाख 37 हज़ार 334 में से सात लाख 37 एवं बांदा के 15 लाख 37 हज़ार 334 में से सात लाख 37 हज़ार 920 व्यक्ति गांव छोड़ गए हैं. गांव छोड़ने वालों की सबसे कम संख्या दमोह की है. यहां के 25 प्रतिशत लोगों ने पलायन किया है. गुना के 26, मुरैना के 27, शिवपुरी व ग्वालियर के 28 प्रतिशत लोगों ने दूसरे शहरों का रुख़ किया हैं.

feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 23, 17 अगस्त–23 अगस्त 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210–211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के– 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के –2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनर्प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

दुनिया

आडवाणी जी को क्या हो गया है?

भारतीय जनता पार्टी पर आडवाणी एंड कंपनी का एकाधिकार स्थापित हो चुका है. ऐसा लगता है कि राजनीति विज्ञान का गिने-चुने लोगों द्वारा शासन करने का सिद्धांत (आयरन लॉ ऑफ ओलीगार्की) भाजपा पर हावी हो चुका है. यह धारणा आडवाणी के हाल के बयान और संघ के अंदर चल रहे आत्ममंथन से पुष्ट होती है. आडवाणी ने अपने पद पर बने रहने की सनक से न सिर्फ़ कार्यकर्ताओं के मनोबल को तोड़ा है, बल्कि विरोध के स्वर को पार्टी में जगह नहीं देकर पार्टी के चरित्र को भी दाग़दार किया है. सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि आडवाणी के बयान ने आरएसएस की उलझन बढ़ा दी है. भाजपा केचिंतन बैठक का हाल यह है कि पार्टी के नाराज़ नेताओं को आडवाणी एंड कंपनी ने इस बैठक से ही बाहर कर दिया. इन सबसे आरएसएस इतना नाराज़ है कि उसने अपने प्रतिनिधि को भी इस चिंतन बैठक में जाने से मना कर दिया है.

मनीष कुमार

चुनाव में बुरी तरह परास्त होने के बाद पहली बार लौहपुरुष लालकृष्ण आडवाणी मीडिया के सामने आए. अपने बयान से उन्होंने एक साथ कई शिकार किए. बड़े नेताओं का खेल भी बड़ा होता है. उन्होंने बिना कुछ कहे, अपने नेतृत्व पर सवाल खड़े करने वाले विरोधियों को पार्टी में हाशिए पर डाल दिया, अपने गुट के नेताओं के ख़िलाफ़ बयानबाज़ी करने वाले नेताओं को चेतावनी दे डाली और आरएसएस को भाजपा से दूर रहने की नसीहत दे दी. अपने बयान से उन्होंने सत्तालोलुपता का ऐसा सबूत दिया कि लोग हैरान हैं. कार्यकर्ता निराश हैं तो भाजपा के कई बड़े नेता परेशान हैं. आडवाणी ने ऐलान कर दिया है कि भारतीय जनता पार्टी की चिंतन बैठक में लोकसभा चुनाव में मिली शिकस्त पर कोई चर्चा नहीं होगी. भाजपा के कुछ कार्यकर्ता और समर्थक यह सोच रहे थे कि शिमला की वादियों में भाजपा में फैली आग शांत हो जाएगी. नाराज़ नेताओं को अपनी बात कहने का मौक़ा दिया जाएगा. हार की वजह क्या है, यह कार्यकर्ताओं के सामने रखा जाएगा और इस बार चिंतन बैठक में दूध का दूध, पानी का पानी हो जाएगा. हालांकि, जो लोग भाजपा को जानते हैं उन्हें पता है कि ऐसा कुछ भी नहीं होने वाला है. भाजपा ने साबित कर दिया है कि यह पार्टी कितनी अप्रजातांत्रिक है, ओलीगार्किक (कुछ लोगों की टोली से शासित होने वाली) है और एक सच्ची दक्षिणपंथी पार्टी है. यहां सब कुछ हो सकता है, बदलाव के अलावा. आडवाणी एंड कंपनी पार्टी के अंदर स्थिति ऐसी पैदा करना चाहती है कि नाराज़ नेताओं को या तो बाहर का रास्ता दिखा दिया जाए या फिर पार्टी छोड़ने के लिए उन्हें मजबूर कर दिया जाए. पिछले कुछ सालों में ऐसा कई बार हो चुका है और इस बार भी इसकी संभावना प्रबल है. अगर आत्ममंथन की चिंता होती, तो भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में इस इस विषय को टाला नहीं गया होता. इसलिए 19 अगस्त से होने वाली यह बैठक, चिंतन बैठक नहीं, बीजेपी के अधिकारियों और नेताओं की दिल्ली की गर्मी से दूर शिमला की ठंडी वादियों में पिकनिक भर है.

वैसे चुनाव परिणाम के बाद पहली बार प्रेस के सामने आए आडवाणी ने जब बोलना शुरू किया, तभी पूरा खेल समझ में आ गया था. उन्होंने साफ कर दिया कि फ़िलहाल वह अपनी कुर्सी छोड़ने वाले नहीं हैं और पूरे पांच साल तक नेता प्रतिपक्ष बने रहेंगे. जब पत्रकारों ने आडवाणी से पूछा कि आपका आगे का प्लान क्या है, तो बगल में बैठी सुषमा स्वराज कूद पड़ीं. कहा, इस सवाल का जवाब मैं दूंगी. नेता प्रतिपक्ष का चुनाव पूरे टर्म के लिए होता है. इसकी कोई डेडलाइन नहीं है. आडवाणी ने भी सुषमा की बातों की पुष्टि करते हुए कहा कि मैं जिस भी बात के लिए राज़ी हुआ, वह मेरी ख़ुद की इच्छा रही. मेरा जो राजनीतिक जीवन रहा है और उसमें देश की ओर से मुझे जो प्रशंसा मिली है, उसमें मैं ऐसा कोई कार्य नहीं करता, जो मुझे पसंद न हो.

आडवाणी और सुषमा स्वराज के बयान से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में खलबली मच गई है. आडवाणी की यह घोषणा आरएसएस के लिए एक सदमे जैसा है. आडवाणी एंड कंपनी ने आरएसएस के निर्देशों का खुला उल्लंघन किया है. ऐसा करके आडवाणी ने चिंतन बैठक के पहले ही एजेंडे को हाईजैक कर लिया है. चुनाव के बाद यह ख़बर मिली थी कि आरएसएस और भाजपा के शीर्ष के 14 नेताओं की एक गुप्त बैठक हुई, जिसमें मोहन भागवत ने साफ-साफ कहा कि पार्टी का नेतृत्व किसी नए नेता के हाथ में दे दिया जाए. मोहन भागवत ने इसके लिए भाजपा नेताओं को अगस्त तक की डेडलाइन दी थी. नोट करने वाली बात यह है कि मीटिंग में भाजपा नेता भी इस बात सहमत थे कि आडवाणी को नेता प्रतिपक्ष से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए. इसलिए तय हुआ कि आडवाणी जी मानसून सत्र तक नेता प्रतिपक्ष बने रहेंगे. लेकिन मानसून सत्र के अंत में आडवाणी ने प्रेस कांफ्रेंस में बयान देकर यह साफ कर दिया कि उन्होंने आरएसएस की सलाहों को दरकिनार कर दिया है. अब आरएसएस को इस बात पर विचार करना होगा कि आगे वह भाजपा के साथ किस तरह के संबंध बनाए रखेगी.

आरएसएस के सूत्रों के मुताबिक संघ ने आडवाणी को यह भरोसा दिया था कि अगर वह नेता प्रतिपक्ष के पद से इस्तीफ़ा दे दें तो उन्हें भाजपा के सांगठनिक मामलों में सक्रिय रखा जाएगा, नए नेताओं और पार्टी के लिए वह एक मार्गदर्शक का काम करेंगे और संघ उनकी यात्रा का समर्थन करेगी. आडवाणी ने कुर्सी न छोड़ने की बात करके आरएसएस की सारी योजनाओं की हवा निकाल दी. आरएसएस के सूत्र बताते हैं कि संघ ने आडवाणी के बाद पार्टी को फिर से खड़ा करने की सारी योजना भी बना ली थी. पार्टी को फिर से *पार्टी विथ द डिफरेंस* बनाने के लिए संघ के नेताओं की सितंबर में बैठक भी होने वाली थी. सूत्रों के मुताबिक संघ की योजना यह थी कि भाजपा में पांच सौ नए और युवा कार्यकर्ताओं को भेजा जाएगा, जो पार्टी को ऊर्जा प्रदान करेंगे और कुछ समय में पार्टी में मौजूद जितने भी अवांछित लोग हैं उन्हें दरकिनार करने का काम करेंगे. लेकिन आडवाणी ने यू-टर्न ले लिया है. अब संघ की अग्निपरीक्षा का वक़्त आ गया है. आडवाणी के बयान से नाराज़ आरएसएस के अधिकारी अब यह कहने लगे हैं कि भाजपा के बिना संघ रह सकता है, लेकिन संघ के बिना भाजपा कुछ भी नहीं है. आरएसएस को लगता है कि भाजपा का भविष्य आडवाणी के साथ नहीं, बल्कि नई पीढ़ी के नेताओं के साथ है. वहीं आडवाणी गुट के लोग पार्टी के मामलों में आरएसएस की कोई भूमिका नहीं चाहते हैं. अब आरएसएस के नज़दीकी भाजपा नेता आडवाणी के नेता प्रतिपक्ष चुने जाने के तकनीकी पहलू को उठा रहे हैं. उनका कहना है कि आडवाणी को पार्टी के किस फोरम में नेता प्रतिपक्ष नहीं चुना गया है. अगर उनका चुनाव किसी भी फोरम में नहीं हुआ है तो वह नेता प्रतिपक्ष कैसे बन गए.

आडवाणी ने न सिर्फ़ चिंतन बैठक में चुनाव में मिली हार पर बहस को ख़त्म किया है, बल्कि एक रणनीति के तहत यशवंत सिन्हा और अरुण शौरी को इस चिंतन बैठक से ही बाहर कर दिया है. दोनों पार्टी के वरिष्ठ नेता हैं. भाजपा की सरकार में प्रमुख और महत्वपूर्ण मंत्रालयों में कैबिनेट मंत्री रहे हैं. हार के बाद इन लोगों ने पार्टी में आडवाणी एंड कंपनी से मुक़ाबला करने का हौसला दिखाया था. कार्यकर्ताओं की बात पार्टी के कर्ता-धर्ता के सामने रखी थी. इन दोनों प्रमुख नेताओं को चिंतन बैठक से बाहर रख कर पार्टी ने यह संदेश देने की कोशिश की है कि भाजपा चंद लोगों की मर्ज़ी के मुताबिक ही चलेगी. जिन्हें यह पसंद नहीं है वे अपना रास्ता ख़ुद तय कर सकते हैं. दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पार्टी अध्यक्ष ने यह घोषणा की थी कि चिंतन बैठक में विरोध कर रहे नेताओं की बात सुनी जाएगी और हार के लिए ज़िम्मेदार कौन हैं, इस पर चर्चा होगी. यानी चुनाव नतीजे का पोस्टमार्टम होगा. अगर किसी कारणवश पार्टी ने यह नहीं करने का फ़ैसला किया है तो राजनाथ सिंह को चाहिए कि देश के सामने यह स्पष्ट करें कि किन कारणों और मजबूरियों की वजह से चिंतन बैठक में चुनावी हार पर बातचीत नहीं होगी, चिंतन बैठक में इन दोनों को क्यों नहीं बुलाया गया आदि-आदि. लेकिन अध्यक्ष जी चुप हैं.

इस चिंतन बैठक के संदर्भ में नोट करने वाली बात यह है कि पहले यह तय हुआ था कि देश भर से 40 वरिष्ठ नेताओं को चिंतन बैठक के लिए बुलाया जाएगा. लेकिन भाजपा मुख्यालय के लोगों के मुताबिक यह संख्या घट कर 25 कर दी गई है. जब लोगों की संख्या कम होगी, तो विरोध के स्वर भी कम होंगे. लेकिन वे 15 लोग कौन हैं, जिन्हें इस लिस्ट से बाहर किया गया है? पार्टी के एक वरिष्ठ नेता कहते हैं कि उन सभी नेताओं को इस चिंतन बैठक से बाहर किया जाएगा, जिन पर ज़रा भी शक़ हो कि वे बैठक में चुनाव समीक्षा की बात उठा सकते हैं.

भाजपा के कुछ नेता मानते हैं कि आडवाणी जी चुनाव समीक्षा से इसलिए कतरा रहे हैं क्योंकि वह ख़ुद इस चुनाव के केंद्रबिंदु थे और उनके ही नज़दीकी नेता और सलाहकार चुनाव प्रचार के कमांडर थे. पार्टी आडवाणी एंड कंपनी की मुट्ठी में बंद है. हार की समीक्षा होती तो यह सवाल भी उठता कि युवाओं के लिए पार्टी का दरवाज़ा किसने बंद कर रखा है? किसने युवा मोर्चे के राष्ट्रीय अध्यक्ष को टिकट न देने का फ़ैसला किया? कार्यकर्ता क्यों नाराज़ है और सवाल यह भी उठता कि पार्टी ने कितने पैसे कहां-कहां ख़र्च किए और किसके ज़रिए ख़र्च किया गया. चिंतन बैठक में अगर हार पर चर्चा होगी तो आडवाणी के नज़दीकी लोग ही निशाने पर आएंगे और उन पर भी सवाल खड़े होंगे. चिंतन बैठक में समीक्षा के दौरान ये सवाल भी उठते कि अटल बिहारी वाजपेयी को चुनाव प्रचार से दूर क्यों रखा गया, उनके पोस्टर्स या उनके मैसेज को क्यों नहीं जनता तक पहुंचाया गया. ज़ाहिर है, इन सवालों के जवाब आडवाणी जी को ही देने पड़ते, जो वह नहीं चाहते हैं.

उधर, आडवाणी कैंप से इसकी वजह बताई जा रही है कि पिछले संसद सत्र में भाजपा का प्रदर्शन काफी अच्छा रहा है, जिससे कार्यकर्ताओं का हौसला बुलंद हुआ है. इसलिए हम हार पर चर्चा करके उनका मनोबल तोड़ने के पक्ष में नहीं हैं और इस बेवजह बहस से पार्टी में अंदरूनी कलह का दौर शुरू हो जाएगा. लेकिन पार्टी के युवा नेता कह रहे हैं यह बात पहले से ही तय थी कि शिमला में होने वाली चिंतन बैठक एक छलावा है. वहां कुछ भी नया नहीं होने वाला है. जो लोग पार्टी को बर्बाद करने पर तुले हैं, उन्हें रोकना किसी के वश में नहीं है. लोकसभा चुनाव में हार के बाद आडवाणी कैंप से यह ख़बर आई थी कि इस शर्मनाक हार के बाद उन्होंने राजनीति से संन्यास की घोषणा कर दी है. बीजेपी में जो नेता आडवाणी के सहारे अपनी राजनीति चमकाते हैं, उन लोगों ने उन्हें मनाया और उन्होंने राजनीति से संन्यास लेने का इरादा बदल लिया और नेता प्रतिपक्ष बनने के लिए राज़ी हो गए. बताया गया कि आडवाणी कैंप की तरफ़ से यह एक चाल चली गई, ताकि वह पार्टी में नया अध्यक्ष बनने तक सक्रिय रह सकें. इसके बाद यशवंत सिन्हा, जसवंत सिंह और अरुण शौरी ने आडवाणी सहित पार्टी नेतृत्व पर आरोप लगाया कि हार के कारणों की समीक्षा करने के बजाय इसके ज़िम्मेदार लोगों को पुरस्कृत किया जा रहा है. नाराज़ नेताओं का मानना है कि आडवाणी के सलाहकारों और चुनाव प्रचार के कमांडरों की वजह से ही पार्टी चुनाव हारी है. यह वक़्त पार्टी की ग़लतियों को छुपाने का नहीं, सच का सामना करने का है. पार्टी ने पिछले दस सालों में क्या-क्या ग़लत किया उस पर विचार करने का है. उन वजहों को समझने की ज़रूरत है कि क्यों भाजपा के कार्यकर्ता नाराज़ हैं. क्यों भाजपा के समर्थक वोट देने अपने घरों से नहीं निकल रहे हैं. ज़मीनी नेताओं, ख़ासकर युवाओं को, जिनकी छवि अच्छी हो और जो निजी महत्वाकांक्षाओं से ऊपर उठकर पार्टी के प्रति ईमानदार हों, आगे लाने की ज़रूरत है. लेकिन यह भी तय है कि पार्टी बदलाव की राह पर चलने को तैयार नहीं है. आडवाणी जी ने चिंतन बैठक में चुनावी हार पर चर्चा न कराने के ऐलान से ख़ुद को पार्टी में अंदरूनी कलह का एक केंद्र बना लिया है. एक सर्वमान्य नेता के रूप में अपनी साख बनाने और नए नेताओं के मार्गदर्शक बनने के बजाय उनके निशाने पर आ गए हैं. पता नहीं इस उम्र में आडवाणी जैसे प्रखर नेता को क्या हो गया है?

manish@chauthiduniya.com

नहीं करेगी भाजपा सच का सामना

जब भाजपा के नाराज़ नेता चिंतन बैठक में नहीं होंगे, तो शिमला में क्या होगा? आडवाणी ने कहा कि हार की समीक्षा नहीं होगी, तो फिर पार्टी शिमला में किस बात पर चिंतन करेगी? अब आडवाणी जी अगले पांच साल तक नेता प्रतिपक्ष बने रहेंगे, मतलब नेतृत्व में परिवर्तन की भी गुंज़ाइश नहीं है, तो फिर इस बैठक के क्या मायने हैं? आरएसएस ने इस बैठक में हिस्सा लेने से मना कर दिया है, तो चिंतन बैठक का उद्देश्य क्या है? शिमला की वादियों में तीन दिनों तक चिंतन बैठक होगी. पत्रकार भी जाएंगे. पार्टी चिंतन भी करेगी और शिमला में पूरे देश को बताया जाएगा कि आडवाणी ही भाजपा के नेता है और रहेंगे. यह भी बताया जाएगा कि पार्टी ने चुनाव में पराजय के कारणों की समीक्षा की, विचारधारा पर बातचीत हुई, पार्टी को फिर से कैसे मज़बूत किया जाएगा उसकी रणनीति तैयार हुई है, युवाओं और नए चेहरों को कैसे पार्टी में शामिल किया जाए, उस पर चर्चा हुई. चुनावी हार के बारे में बताया जाएगा कि चिंतन बैठक में 15वीं लोकसभा चुनाव की समीक्षा हुई. जिसका निष्कर्ष यह है कि देश की जनता वामपंथियों को सबक़ सिखाने की ठान चुकी थी. पिछली बार वामपंथियों ने सरकार को इतना परेशान किया कि लोग उनसे नाराज़ हो गए. चुनाव समीक्षा में पार्टी का मानना है कि देश द्विदलीय प्रणाली की ओर जा रही है. जनता देश में द्विदलीय प्रणाली चाहती है, इसलिए लोगों ने क्षेत्रीय दलों को नकार दिया. यह भी बताया जाएगा कि उत्तर प्रदेश में वरुण गांधी के बयान से वोटों का ध्रुवीकरण हो गया, जिसकी वजह से उम्मीद के मुताबिक सीटे नहीं आईं. कुछ राज्यों में हमारी उम्मीद से बेहतर प्रदर्शन रहा, तो कुछ राज्यों में वहां की क्षेत्रीय परिस्थितियों के कारण सीटें कम हुईं. चिंतन बैठक के बाद यह भी बताया जाएगा कि पार्टी की विचारधारा में कोई बदलाव नहीं आया है, पार्टी इनक्लुसिव हिंदुत्व में विश्वास रखती है, पार्टी दीनदयाल उपाध्याय और श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बताए राष्ट्रवाद पर चलेगी. पार्टी चिंतन बैठक के बाद यह कहेगी कि भाजपा चुनाव हारी नहीं है, कांग्रेस जीती है. पार्टी में युवाओं को शामिल करने की भी तैयारी बताई जाएगी, लेकिन इसकी रणनीति क्या होगी इसे आगे के लिए टाल दिया जाएगा. आरएसएस के साथ संबंधों के बारे में बताया जाएगा कि संघ भाजपा के लिए प्रेरणास्रोत था और रहेगा. चिंतन बैठक से भाजपा के उन नाराज़ नेताओं को भी संदेश दिया जाएगा कि पार्टी में रहना है तो उनके हिसाब से चलना होगा. अगर पसंद नहीं है तो आप अपना अलग रास्ता चुन सकते हैं.

इस चिंतन बैठक में हार के कारणों का सार यह होगा कि चुनाव प्रचार और रणनीति में कोई कमी नहीं थी. बस, देश की जनता ही उनकी बातों को समझ नहीं पाई.

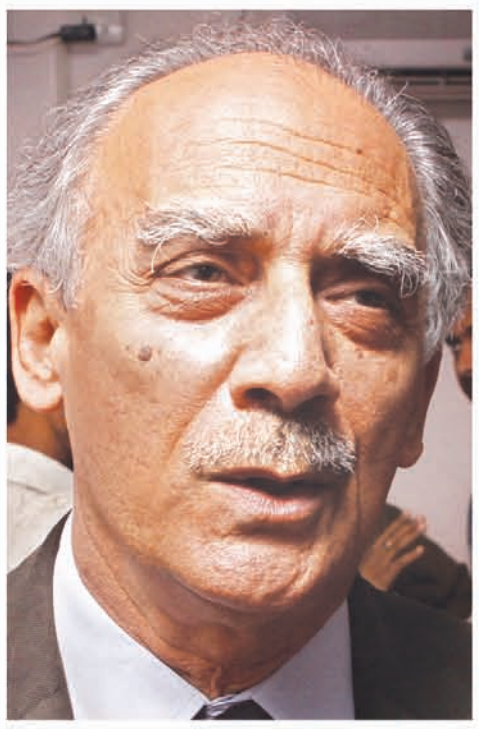

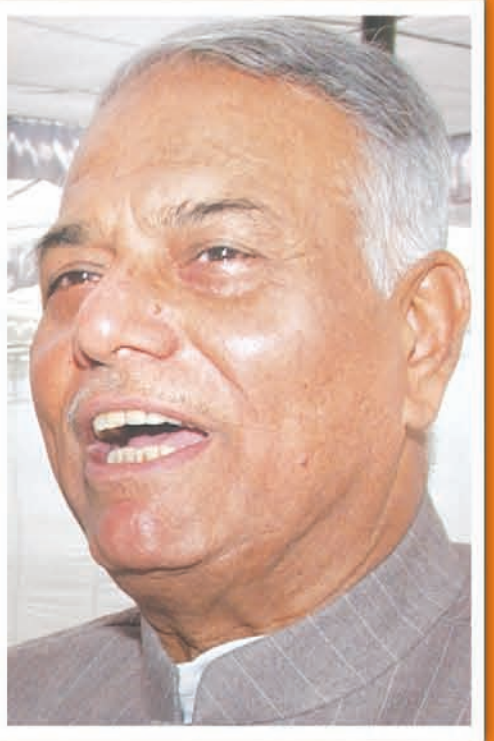

उपचुनाव तय करेंगे बिहार की दिशा

सुरेंद्र किशोर

जन समर्थन की दृष्टि से कांग्रेस बिहार में आगे जाएगी या पीछे हटेगी? अगले महीने राज्य विधानसभा के 18 क्षेत्रों में होने वाले उपचुनाव के नतीजे इस सवाल का जवाब दे देंगे. बिहार विधानसभा के कई सदस्यों के हाल में लोकसभा के लिए चुन लिए जाने व कुछ अन्य विधायकों द्वारा दल-बदल किए जाने के कारण ये सीटें खाली हुई हैं. दलबदल करके लोकसभा चुनाव लड़ने के लिए विधानसभा सीटें छोड़नी ज़रूरी हो गई थीं.

हाल के लोकसभा चुनाव में बिहार में सिर्फ़ चार सीटों पर सिमट जाने के कारण लालू प्रसाद इन दिनों उदास हैं और उन्होंने एक बार फिर येन-केन प्रकारेण अपनी राजनीतिक ताक़त बढ़ाने की कसरत शुरू कर दी है. रामविलास पासवान की भी वही स्थिति है. दोनों दल बिहार में इन दिनों आंदोलनरत हैं. ये दल नीतीश सरकार की कमज़ोरियों का राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश में लगे हुए हैं. ऐसा करने का उनको लोकतांत्रिक हक़ भी है. दूसरी ओर, राजग का मनोबल बढ़ा हुआ है, क्योंकि उसे लोकसभा की 40 में से 32 सीटें मिलीं हैं. कांग्रेस को बिहार में दो सीटें मिलीं. लालू प्रसाद से नाराज़ चल रही कांग्रेस ने बिहार में अकेले चुनाव लड़ने का निर्णय किया है. इधर कांग्रेस रामविलास पासवान पर डोरे ज़रूर डाल रही है, पर वह कांग्रेस में शामिल होने से इनकार कर चुके हैं. लोजपा नेता ने यह भी कह दिया है कि वह राजद को छोड़ कर कांग्रेस से चुनावी तालमेल भी नहीं करेंगे. राजनीति के चतुर खिलाड़ी रामविलास पासवान यह जानते हैं कि कांग्रेस की अपेक्षा अब भी बिहार में लालू प्रसाद के पास अधिक वोट हैं. इसलिए वह राजद को छोड़ कर कांग्रेस के पास क्यों जाएंगे? याद रहे कि कांग्रेस लालू प्रसाद से कोई संबंध रखना ही नहीं चाहती. आज की तो यही स्थिति है. क्षण-क्षण बदलती राजनीति के इस दौर में कल क्या होगा, कोई नहीं जानता. हाल में कांग्रेस ने जिस तरह लोकसभा के अंदर आगे की अपनी एक सीट लालू प्रसाद को दे दी, उससे यह कहना कठिन है कि लालू प्रसाद से संपर्क नहीं रखने का कांग्रेस का निर्णय अटल है.

ख़ैर जो हो, आज की स्थिति के अनुसार ही आकलन करें तो कांग्रेस को अगला उपचुनाव लगभग अकेले ही लड़ना होगा. अब देखिए कि कांग्रेस की इस राज्य में अपनी ताक़त कितनी है? गत लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को बिहार में क़रीब दस प्रतिशत मत मिले थे. पर इसमें वे मत भी थे जो राजनीतिक पटल पर अटल बिहारी वाजपेयी की अनुपस्थिति व राहुल गांधी की ज़ोरदार उपस्थिति के कारण राजग से निकल कर कांग्रेस में चले गए थे. राजनीतिक प्रेक्षकों के अनुसार वे मत अब राजग में लौट सकते हैं, क्योंकि वे मूलत: लालू विरोधी मत हैं. प्रेक्षकों के अनुसार लालू प्रसाद ने पिछड़ों को सवर्णों का भय दिखाकर 15 साल तक शासन किया. अब नीतीश कुमार लालू प्रसाद के कथित जंगल राज की वापसी के ख़तरे का भय दिखा कर लंबे समय तक शासन करना चाहते हैं. यानी अगले उपचुनाव में लालू विरोधी मतदाताओं में से एक हिस्सा कांग्रेस को मत देकर राजद विरोधी वोट का बंटवारा नहीं करना चाहता.

हालांकि कांग्रेस बिहार को लेकर फिर भी इन दिनों उत्साह में है. उत्साह का कारण भी है. कांग्रेस के मत में 2004 की अपेक्षा हालिया लोकसभा चुनाव में चार प्रतिशत का उछाल हुआ है. दूसरी ओर कांग्रेस केंद्र में इस बार अधिक मज़बूती से सत्ता में आई है. तीसरी बात यह है कि बिहार कांग्रेस के प्रभारी जगदीश टाइटलर ने यह हौसला बांधा है कि अगले विधानसभा चुनाव में कांग्रेस बिहार में भी सत्ता में आएगी.

कई बार आम चुनावों में विजयी होने के बावजूद सत्ता दल को बाद के किन्हीं उप-चुनावों में पराजय मिल जाती है. इसके बाद सत्ता दल को राजनीतिक ढलान का मुंह देखना पड़ता है. क्या बिहार में अगले महीने के उपचुनावों के बाद कोई ऐसा ही राजनीतिक घटनाक्रम शुरू होने वाला है? क्या लालू प्रसाद व रामविलास पासवान इन्हीं उपचुनावों के ज़रिए अपने राजनीतिक पुनर्जीवन की शुरुआत की उम्मीद कर सकते हैं? प्रतिपक्ष यदि हाल के इतिहास के कुछ पिछले उदाहरणों के सहारे ऐसी उम्मीद कर रहा है तो कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है. पर क्या इस बार भी ऐसा ही कुछ हो सकता है? वैसे नीतीश की राजनीति को पराजित करना अभी अनेक प्रेक्षकों को कठिन ही लगता है.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

प्रेक्षकों के अनुसार, प्रतिपक्ष को अभी बिहार में किसी बड़ी राजनीतिक सफलता की उम्मीद नहीं ही करनी चाहिए. पर कोशिश करने में क्या हर्ज है? लालू प्रसाद और राम विलास पासवान चाहते हैं कि उपचुनावों में पूरा प्रतिपक्ष मिलकर राजग के ख़िलाफ़ उम्मीदवार खड़ा करे. पर कांग्रेस की राज्य शाखा के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. समीर कुमार सिंह ने सार्वजनिक तौर पर यह कह दिया है कि कांग्रेस सभी 18 सीटों पर चुनाव लड़ेगी. यदि कांग्रेस ने अलग से चुनाव लड़ा, तो इससे लालू प्रसाद व रामविलास पासवान को निराशा ही होगी. पर यह तो तय माना जा रहा है कि राजद व लोजपा मिलकर उपचुनाव लड़ेंगे. यानी अभी तो यही लगता है कि इस बार भी वैसा ही चुनावी गठबंधन बनेगा जैसा गत लोकसभा चुनाव के समय बना था. हालांकि कल के बारे में कोई नहीं जानता.

feedback@chauthiduniya.com

शिक्षक आंदोलन से दबाव में हैं नीतीश

सवाल है कि गत लोकसभा चुनाव के बाद बिहार की राजनीतिक स्थिति में क्या कोई फ़र्क़ आया है? आया है तो, क्या उसका लाभ राजद-लोजपा को मिलने वाला है? जवाब है-नहीं. ऐसा कोई फ़र्क़ नज़र नहीं आ रहा है, जिसे महत्वपूर्ण कहा जाए. हां, स्कूली शिक्षकों के आंदोलन से ज़रूर राजग और नीतीश सरकार थोड़ा दबाव में है. याद रहे कि पिछले दिनों नीतीश सरकार ने प्राप्तांकों यानी मार्क्स के आधार पर राज्य भर में क़रीब दो लाख स्कूली शिक्षकों की बहालियां कर लीं. शिक्षक नियोजन नियमावली, 2006 के अनुसार जब उनकी मूल्यांकन परीक्षा का समय आया तो शिक्षकों ने इस प्रस्तावित परीक्षा में शामिल होने से ही मना कर दिया. वे आंदोलन करने लगे और प्रतिपक्ष ने उन्हें शह देना शुरू कर दिया. बिहार सरकार कह रही है कि निश्चित वेतन पर बहाल इन शिक्षकों के मूल्यांकन परीक्षा में विफल हो जाने पर भी उन्हें नौकरी से नहीं निकाला जाएगा, पर उन्हें वेतन वद्धि का लाभ नहीं मिलेगा. उन्हें इस बीच ख़ुद को बेहतर बनाना होगा. इस मूल्यांकन परीक्षा में पहली कक्षा से आठवीं स्तर तक के ही प्रश्न होंगे. पर इन प्रश्नों के जवाब देने के लिए भी मूल्यांकन परीक्षा में बैठने को वे तैयार नहीं हो रहे हैं.

दूसरी ओर शिक्षक, उनके नेतागण और प्रतिपक्षी दल इन नवनियुक्त शिक्षकों को अब किसी मूल्यांकन परीक्षा से गुज़रे बिना ही पूर्ण सरकारी वेतनमान देने की मांग के समर्थन में आंदोलन कर रहे हैं. इसको लेकर राजनीतिक व शैक्षणिक माहौल गरमा गया है. इन शिक्षकों की बहाली का लाभ गत लोकसभा चुनाव में राजग को मिला था. बिहार में लंबे अंतराल के बाद इतनी अधिक संख्या में लोगों को रोज़गार मिला था. दूसरी ओर तब राजद इन्हीं शिक्षकों के बारे में कह रहा था कि इनकी बहाली जाली मार्क्स सीटों के आधार पर ग़लत तरीक़े से हुई है. राजग तब इन शिक्षकों के बचाव में था. पर अब स्थिति बदली हुई है. नवनियुक्त शिक्षक गुस्से में हैं, पर आम लोगों की इनके साथ कम ही सहानुभूति देखी जा रही है. अगले उपचुनाव में इन शिक्षकों के मामले का कितना असर पड़ता है, यह देखना दिलचस्प होगा. पर कुछ असर तो पड़ ही सकता है. इनकी संख्या बहुत बड़ी है.

फोटो-*सुनील मल्होत्रा*

दूसरी ओर सरकारी भ्रष्टाचार पर क़ाबू पाने में नीतीश सरकार की विफलता का लाभ अगले उप चुनावों में उठाने की कोशिश प्रतिपक्ष कर सकता है. इसलिए कि जनता सचमुच सरकारी भ्रष्टाचार से बेहद पीड़ित है. पर भ्रष्टाचार के मामले में राजद-लोजपा का रिकार्ड राजग की अपेक्षा ख़राब ही रहा है. दूसरी ओर, मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने कहा है कि भ्रष्ट लोकसेवकों की संपत्ति ज़ब्त करने के उद्देश्य से बिहार विधानसभा से विधेयक पास करा कर उसे मंज़ूरी के लिए केंद्र सरकार को छह माह पहले ही भेज दिया गया है. पर केंद्र सरकार जानबूझ कर उस पर अपनी मंज़ूरी नहीं दे रही है. इससे राज्य में भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ कारगर कार्रवाई करने में दिक़्क़त हो रही है. मुख्यमंत्री अपने अनुभवों के आधार पर यह भी कह रहे हैं कि भ्रष्टाचार बिहार के विकास में सबसे अधिक बाधक बन गया है.

बिहार सरकार चाहती है कि भ्रष्टाचार के आरोप में गिरफ़्तार लोकसेवकों को अदालतें जल्द से जल्द सज़ा दे. उनकी नौकरी और पेंशन समाप्त हो. उनकी नाजायज़ संपत्ति ज़ब्त हो. उनके मामले की सुनवाई त्वरित अदालतों के ज़रिए हो. तभी जाकर उस सज़ा का अन्य भ्रष्ट लोकसेवकों पर असर पड़ेगा.

यानी राजग इस मुद्दे को कांग्रेस के पाले में डाल रहा है. इस बीच, राज्य में जारी विकास व अपेक्षाकृत बेहतर क़ानून-व्यवस्था के कारण राजग को मतदाताओं से एक बार फिर समर्थन मिलने की संभावना कई हलकों में जताई जा रही है.

याद रहे कि गत लोकसभा चुनाव के तत्काल बाद फतुहा विधानसभा चुनाव क्षेत्र में उपचुनाव हुआ था. राजद और लोजपा ने मिलकर वहां उम्मीदवार खड़ा कराया. फिर भी वहां राजग ही विजयी रहा. लोकसभा चुनाव से पहले और नीतीश कुमार के बिहार में सत्ता में आने के बाद बारी-बारी से तीन लोकसभा और तीन विधानसभा चुनाव क्षेत्रों के उप चुनाव हुए थे. सबमें सत्ताधारी राजग की ही जीत हुई. एक बात और राजग अपने पक्ष में मान रहा है. लोकसभा चुनाव में जो मत राहुल गांधी के कारण कांग्रेस को मिल गए थे, वे राजग में वापस आ जाएंगे. जिन विधान सभा चुनाव क्षेत्रों में अगले माह उप चुनाव होंगे, वे हैं- बगहा, मुंगेर, बेगूसराय, सिमरी बख्तियारपुर, कल्याणपुर, नौतन, त्रिवेणीगंज, औराई, धोरैया, घोसी, अररिया, रामगढ़, बोधगया, चैनपुर, वारिसनगर, बोचहा, फुलवारीशरीफ़ और चेनारी.

इन 18 विधानसभा चुनाव क्षेत्रों में से 13 विधानसभा क्षेत्रों के विधायक गत लोकसभा चुनाव में विजयी हो गए. ज़ाहिर है कि इनमें से अधिकतर राजग के ही हैं और इस कारण ही ये सीटें ख़ाली हुई हैं. फुलवारीशरीफ़ के राजद विधायक श्याम रजक लोकसभा चुनाव के बाद जद-यू में शामिल हो गए, इसलिए उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया. राजग उन्हें वहां से अपना उम्मीदवार बनाएगा. राजद के रमई राम ने अपनी विधानसभा सीट छोड़कर कांग्रेस से लोकसभा चुनाव लड़ा था, पर पराजित होकर वह हाल में जद-यू में मिल गए. विधायक ललन पासवान ने जद-यू छोड़ कर राजद से सासाराम में मीरा कुमार के ख़िलाफ़ चुनाव लड़ा था. ललन पासवान हार गए.

अब देखना है कि इन 18 विधानसभा चुनाव क्षेत्रों में विभिन्न दल परिवारवाद के आधार पर उम्मीदवार खड़े करते हैं या तपे-तपाए कार्यकर्ताओं को टिकट देते हैं. नीतीश कुमार ने अब तक आम तौर पर अपने दल के टिकट वितरण में परिवारवाद को अस्वीकार ही किया है, पर इस बार उनके दल के कतिपय दबंग नव निर्वाचित सांसदों की ओर से उनके परिजनों को ही टिकट देने का दबाव बनेगा. देखना है कि नीतीश कुमार अपने ही बनाए मापदंडों को इस बार भी क़ायम रखते हैं या परिवारवादियों के दबाव में आ जाते हैं! चूंकि पिछले चुनाव में अपराधी व बाहुबली बुरी तरह पराजित हुए, इसलिए यह उम्मीद तो की ही जा रही है कि इस बार विभिन्न माफियावादी राजनीतिक दल भी माफिया तत्वों से दूर ही रहेंगे.

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि जिस गठबंधन को इन 18 सीटों पर निर्णायक सफलता मिलेगी, उसी गठबंधन को बिहार विधान सभा के अगले चुनाव के बाद भी बिहार की सत्ता मिलेगी. विधानसभा चुनाव क़रीब एक साल के बाद होने वाला है.

सु. कि.

feedback@chauthiduniya.com

भारत में हो रही है सेक्स बाज़ार खोलने की साज़िश

समलैंगिकों को हक़ देने के नाम पर भारत में सेक्स के एक बड़े बाज़ार के लिए रास्ता खोला जा रहा है. थाईलैंड, फिलीपींस, मेक्सिको, ब्राज़ील जैसे देशों में सेक्स की एक बहुत बड़ी मंडी है. उसी तर्ज पर अब भारत में इन मामलों में ढील बरती जा रही है, जिससे इन देशों में स्थित ये बाजार अब भारत में भी अपने पैर जमाने की फिराक़ में है. इसलिए ज्वाइंट एक्शन कमेटी कन्नूर (जैकइंडिया) के समन्वयक पुरुषोत्तम मुलोली इस साज़िश के ख़िलाफ़ भारतीय समाज के लिए एकजुट होना बहुत ज़रूरी मानते हैं. इस सिलसिले में समलैंगिकता के मुद्दे पर इंस्टीट्यूट ऑफ ऑबजेक्टिव स्टडीज के बैनर तले पिछले दिनों सेमिनार भी किया गया.

पुरुषोत्तम मुलोली और जैकइंडिया समलैंगिकता को क़ानूनी मान्यता मिलने के ख़िलाफ़ आंदोलन में जुटे हैं. उन्होंने कहा कि दिल्ली उच्च न्यायालय का फ़ैसला दो समलैंगिकों के बीच की आपसी रज़ामंदी से संबंध बनाने की बात को ग़ैर-आपराधिक करार देता है, जिससे भारत में ग्लोबल सेक्स मंडी के आने के लिए माहौल तैयार होगा. उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि यह मीडिया में फैलाया जा रहा भ्रम है कि धारा 377 उन्नीसवीं सदी का एक पुराना क़ानून है, जिसे हटा देना चाहिए. दरअसल इस क़ानून की आज़ादी के बाद दो बार समीक्षा हो चुकी है. पुरुषोत्तम मुलोली ने यह भी कहा कि यह अजीब है कि भारत के क़ानून मंत्री भी इस फ़ैसले पर ख़ुशी जताएं, जबकि वह इस मामले से जुड़े ही नहीं हैं. इस फ़ैसले को लेकर अख़बारों और मीडिया में फ़ैसला आने से पहले ही ख़ुशी जताई जाने लगी. उसी दौरान अमेरिकी विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन की मौजूदगी और फ़ैसले के आसपास एक अख़बार में आया डॉ. कर्ण सिंह का लेख कि समलैंगिकों को शांति से जीने के लिए अकेले छोड़ देना चाहिए, ज़ाहिर तौर पर दिखाता है कि भारत का तथाकथित संभ्रांत वर्ग इस मामले में ढील दिए जाने पर अपनी मानसिकता तय कर चुका है. उन्होंने यह भी कहा कि दिल्ली उच्च न्यायालय का संसद को समलैंगिक लोगों के अधिकारों के लिए उपयुक्त क़ानून बनाने को कहना, अपनी कार्यसीमा से बाहर जाने वाली बात है. जिन दो कमीशनों ने धारा 377 की समीक्षा की थी, उसमें से एक ने इस धारा का समर्थन किया था. वहीं दूसरे ने समलैंगिक अधिकारों की बात कही थी. इससे बाद में मामला कैबिनेट के पास विचार के लिए चला गया था.

इससे पहले इस सेमिनार की शुरुआत करते हुए इंस्टीट्यूट ऑफ ऑबजेक्टिव स्टडीज के अध्यक्ष डॉ. मोहम्मद मंज़ूर आलम ने कहा कि यह पूरा मामला दरअसल भारत के कुछ वेस्टर्नाइज्ड इलीट लोगों और भारत की बहुसंख्यक आम जनता की सोच के बीच का संघर्ष है. इस संघर्ष का नतीजा ही तय करेगा कि हमारा भविष्य किस तरह से चलेगा-ईश्वर के बनाए नियमों पर या हमारी अपनी मनमर्ज़ी के हिसाब से. डॉ. आलम ने सरकार को यह सलाह भी दी कि वह ऐसा कोई क़ानून लागू न करे, जिससे भारत के नैतिक ढांचे पर ग़लत असर पड़े.

वरिष्ठ पत्रकार व पूर्व सांसद संतोष भारतीय ने चेताया कि एक बहुत बड़ा अंतरराष्ट्रीय सेक्स बाज़ार भारत पर नज़रें गड़ाए हुए है. वे यहां तभी अपने पैर जमा सकते हैं, जब क़ानूनों में ढील दे दी जाए. उन्होंने ऐसी ताक़तों के लिए रास्ते न खोलने की अपील की. हालांकि महाशक्ति पीठ के स्वामी सर्वानंद सरस्वती ने कहा कि क़ानून चाहे जो भी हों, भारत की आम जनता इस तरह के व्यवहार से दूर ही रहेगी.

इस मौक़े पर बुद्धिस्ट सोसायटी ऑफ इंडिया की दिल्ली इकाई के अध्यक्ष डॉ. डीबीएस सेहरा ने कहा कि समलैंगिकता भारतीय समाज के नैतिक मूल्यों के ख़िलाफ़ है. इसे कभी भी क़ानूनी मान्यता नहीं मिलनी चाहिए. किसी ग़लत काम के लिए अगर दो लोगों के बीच रज़ामंदी है तो यह उसके सही होने का मानक तो नहीं हो सकता.

सिख नेता जसबीर सिंह रोड़े ने कहा कि किसी की इच्छाओं को पूरा करने के लिए समलैंगिकता को क़ानूनी शकल नहीं दी जा सकती. ऐसे में अगर हमारी इच्छा पैसों की हुई क्या बैंक लूटने की आज़ादी मिल जाएगी?

सिख नेता मनजीत सिंह कलकत्ता ने समलैंगिकता को शर्मनाक करार देते हुए कहा कि न्यायालय का काम नैतिकता पर फ़ैसला लेना नहीं है. विद्या ज्योति संस्था के फादर टीके जॉन ने भी समलैंगिक आचरण का विरोध किया.

इस अवसर पर कुछ संकल्प लिए गए, जो इस तरह हैं-

1. इस फ़ैसले और शारीरिक स्वास्थ्य, भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक नैतिकता और आध्यात्मिक कुशलता पर दूरगामी ग़लत प्रभावों का ज़ोरदार विरोध किया जाए.
2. अपने मूल्यों की रक्षा के लिए इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ सर्वोच्च न्यायालय में क़ानूनी चुनौती को समर्थन दिया जाए.
3. इस नैतिक पतन के ख़िलाफ़ समाज को जागरुक और एकजुट किया जाए.
4. केंद्र से ऐसे क़ानून लाने का अनुरोध किया जाए जो और अधिक नैतिक पतन से समाज को बचाए.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

ख़ून से सनी सोनार बांग्ला की धरती

बंगाल बंद के दिन हावड़ा पुल पर जलती सरकारी बस

बिमल राय

एक समय था, जब बेहतर क़ानून व व्यवस्था के मामले में बंगाल की मिसाल दी जाती थी. कोलकाता से दिल्ली तक कॉमरेडों का सीना फूला रहता था. पर आज सोनार बांग्ला की सुनहरी तस्वीर पर सिर्फ़ ख़ून के धब्बे दिख रहे हैं. तब सत्ताधारी कॉमरेडों का एजेंडा विकास था, सर्वहारा के हितों की रक्षा करना था, अपनी नीतियों से समझौता करके भी बंगाल को विकास की पटरी पर दौड़ाना था. लेकिन अब हालात बदल गए हैं. एजेंडा बदल गया है. तीस सालों से संघर्ष कर रहा विपक्ष अब सत्ता की देहरी के क़रीब है तो कॉमरेड किसी भी हालत में कुर्सी जकड़कर रखना चाहते हैं. राजनीतिक ज़मीन दखलियाने की जंग इतनी घनघोर है कि अंत नहीं दिखता. कहीं कोई सूर्यास्त नहीं और न ही सुनाई पड़ रहा है युद्धविराम का शंखनाद. उधर, माओवादी हैं, जिन्हें लालगढ़ चाहिए. विमल गुरुंग हैं, जिन्हें गोरखालैंड चाहिए. कुछ लोगों को कामतापुर चाहिए तो अग्निकन्या ममता को अब चाहिए पूरा बंगाल. गांधी की विरासत के प्रतीक महामहिम गोपालकृष्ण गांधी चिंतित हैं. गृहमंत्री चिंतित हैं, राज्य के मुखिया बुद्धदेव भट्टाचार्य भी दुखी हैं. पर हल नहीं दिख रहा. पहल हो रही है, मगर कामयाबी नहीं मिल रही और ख़ून बहता जा रहा है. 30 जुलाई को केंद्रीय गृहमंत्री पी चिदंबरम ने टिप्पणी की तो बवाल हो गया. गृह मंत्री ने कहा कि बंगाल के कुछ ज़िले लड़ाई का मैदान बन गए हैं और इसे हर क़ीमत पर रोकना होगा. गृह मंत्री का क्षोभ भी जायज़ था, क्योंकि लालगढ़ के माओवादियों से निपटने के लिए राज्य सरकार ने जितने सुरक्षा बल मांगे थे, केंद्र ने दिए, पर राजनीतिक हिंसा के लिए केंद्र क्या करे? राजनीतिक हिंसा के छर्रे कांग्रेसियों को भी लग रहे हैं. महामहिम को वाम सरकार ने कभी पसंद नहीं किया और पहले भी शिष्टाचार ताक पर रखकर कई बार उनकी कटु आलोचना की है. बंगाल में राजनीतिक हिंसा का तांडव वाले बयान पर भी वाममोर्चा की ओर से तीखी प्रतिक्रिया आई. हालांकि राज्यपाल ने सभी दलों के नेताओं से हिंसा रोकने, इसमें शामिल अपने कार्यकर्ताओं की पहचान करने और उन्हें क़ानून के मुताबिक सज़ा के लिए छोड़ देने की अपील की है. उन्होंने राज्य सरकार को भी अवैध हथियारों को रोकने, हिंसा में लगे लोगों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने और लोगों में विश्वास क़ायम करने के लिए तुरंत क़दम उठाने को कहा है. राज्यपाल के बयान में उनकी पीड़ा भी साफ दिखी और उन्होंने अपनी विज्ञप्ति में लिखा है कि कोई भी एक दिन नहीं बीतता, जब कोई कहीं अपने राजनीतिक लगाव की वजह से नहीं मारा जा रहा. हर दिन एक विधवा का विलाप सुनने को मिलता है. यह भी ग़ौरतलब है कि बयान के एक दिन पहले ही वामपंथी विधायकों का एक प्रतिनिधिमंडल महामहिम से मिला था और हिंसा रोकने की दिशा में उनसे सहयोग मांगा था. उनका आरोप था कि तृणमूल कार्यकर्ता ही हिंसा फैला रहे हैं. माकपा को मिर्ची इसलिए भी लगी है कि राज्यपाल ने अवैध हथियारों का मामला भी उठाया था. यह भी सबने देखा है कि एक माह पहले ही खेजुरी में माकपा काडरों के घर से भारी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद बरामद हुए थे. माकपा नेता कह रहे हैं कि राज्यपाल ने बयान के लिए जो समय चुना है, वह ग़लत है. आलोचनाएं हों, पर राज्यपाल ने नंदीग्राम फायरिंग की भी आलोचना की थी. उन्होंने राज्य में एक बार बिजली कटौती से परेशान लोगों की पीड़ा बांटते हुए राजभवन की बिजली कुछ घंटों के लिए गुल रखने की घोषणा की और उसका पालन भी किया था. यही वजह है कि ममता जहां गांधी का बचाव कर रही हैं और उन्हें दिसंबर के बाद बंगाल में रखने के पक्ष में हैं, वहीं वाममोर्चा उनका कार्यकाल बढ़ाने के पक्ष में नहीं है.

चलती रही है आमने-सामने की लड़ाई

लोकसभा चुनाव प्रचार के दौरान तो हिंसा हुई ही, परिणाम आने के बाद तो यह सिलसिला और तेज़ हो गया. चुनाव के दूसरे दौर में आसनसोल में वोट डालने के लिए पंक्ति में लगे एक व्यक्ति की गला काटकर हत्या हुई, तो 16 मई को परिणाम आने के बाद ही बांकुड़ा में फिल्म अभिनेत्री शताब्दी राय के चुनाव क्षेत्र में हिंसा भड़क उठी. 17 को राज्य के कई हिस्सों में हुई हिंसक घटनाओं में 24 लोग घायल हुए. हावड़ा के जयपुर थाना इलाक़े में शोलबाग में 30 घर फूंके गए. वीरभूम के दो इलाक़ों में माकपा-तृणमूल संघर्ष में नौ लोग घायल हुए. आठ जून को बहरामपुर कालेज के एक एसएफआई समर्थक को जाल में बांधकर डुबाने की कोशिश की गई. 15 जून को पूर्व मेदिनीपुर के भूपतिनगर बाज़ार में हुई हिंसा में एक 13 वर्षीया किशोरी सायंतिका रक्षित मारी गई. दलीय संघर्षों में अपराधी भी बहती गंगा में हाथ धो रहे हैं, क्योंकि हिंसा प्रभावित इलाक़ों में लूटपाट की वारदातें भी हुई हैं. 18 जून को बर्दवान के मंगलकोट में माकपा नेता फाल्गुनी मुखोपाध्याय का ख़ून हुआ. पांसकुड़ा में वाममोर्चा के एक पूर्व मंत्री उमर अली के तृणमूल में शामिल होने से नाराज़ माकपा कार्यकर्ताओं ने उनके घर में तोड़फोड़ की. चुनाव के बाद जिन इलाक़ों में संघर्ष की घटनाएं हुई हैं, उनमें खेजुरी भी है. खेजूरी में माकपा के कार्यालय से भारी मात्रा में हथियार व गोला-बारूद बरामद हुए. पार्टी कार्यालय में आग लगा दी गई. यहां पासा पूरी तरह पलट गया. माकपा समर्थकों को अब तृणमूल वालों को जुर्माना देना पड़ रहा है. प्रचंड हिंसा के पहले दौर की शुरुआत एक तरह से जून में तीन से पांच तारीख़ के 48 घंटों में हुई. चार जून को माकपा के कैडरों ने युद्धिष्ठिर दलुई की हत्या कर दी. उसका घर फूंका गया. बाद में तृणमूल का एक कार्यालय और कई दुकानें भी जला दी गईं. हत्या और आगजनी के बाद कैडरों ने विजय जुलूस निकाला. नाराज़ तृणमूल समर्थकों ने माकपा के एक पूर्व पंचायत सदस्य तारिणी मन्ना के साथ मारपीट की व मोटरसाइकिल फूंक दी. संघर्ष की आग पास के जाकरी, गोघाट, राममोहन, बाटानल और पुरसुरा तक फैल गई. चार जून को पश्चिमी मेदिनीपुर में दो माकपा नेताओं की हत्या हुई. उसी दिन वनगांव के गोपालनगर में अयान नबी नामक एक तृणमूल समर्थक मारा गया. इसका बदला लेते हुए पांच जून को तृणमूल समर्थकों ने सहदेव सरकार नामक एक माकपा समर्थक की हत्या कर दी. इसके एक दिन पहले मेदिनीपुर के पांसकुड़ा में माकपा व तृणमूल समर्थकों के बीच संघर्ष में 11 लोग घायल हुए. हिंसा की ताज़ा लपटें दक्षिण 24 परगना के भांगड़ व कैनिंग, उत्तर 24 परगना के घोला और बर्दवान के मंगलकोट से उठी हैं. लालगढ़ और बेलपहाड़ी में एक अगस्त को दो माकपा नेताओं- कालीपद सिंह और निर्मल महतो की हत्याएं हुईं. कहा गया कि यह करतूत माओवादियों की है, हालांकि उनकी ओर से खंडन आया. इस तरह माकपा के लोग इस हत्या के लिए तृणमूल को दोषी ठहरा रहे हैं. पहली अगस्त को ही बर्दवान के केतुग्राम में एक माकपा और एक कांग्रेस कार्यकर्ता को जान गंवानी पड़ी. यह सिलसिला चल रहा है. टकराव ख़त्म होने का नाम नहीं ले रहा.

बंगाल में राजनीतिक हिंसा का एक लंबा इतिहास रहा है. दरअसल इस हिंसा की शुरुआत 70 के दशक में ही हुई, तब सिद्धार्थ शंकर राय का शासन था. नक्सली हिंसा के दमन के नाम पर श्री राय ने माकपा के रूप में उभर रहे राजनीतिक विरोधी पर भी निशाना साधा. फरवरी 1971 के आम चुनावों से पहले कोलकाता में दिनदहाड़े फारवर्ड ब्लॉक के राष्ट्रीय सचिव हेमंत बसु की हत्या कर दी गई. पार्टी के नेताओं ने इसके लिए माकपा के लोगों को ज़िम्मेवार बताया, पर माकपा ने कहा कि हत्या कांग्रेसियों ने की है. 1977 में वाममोर्चा के सत्ता में आने के बाद पांच सालों में, ख़ासकर बंगाल के गांवों में माकपा का पूरा दबदबा क़ायम हो गया. पिछले तीन दशकों से लालदुर्ग के अटूट रहने के पीछे एक बड़ी वजह गांवों में उसका मज़बूत संगठन रही. इस मज़बूती की पृष्ठभूमि में विरोधियों का दमन भी शामिल था. गांवों में शिक्षकों, ठेकेदारों और पंचायत सदस्यों की इतनी मज़बूत तिकड़ी बनी कि विपक्ष उभर नहीं पाया. हालांकि माकपा दमन से इंकार करती रही. राज्य माकपा सचिव विमान बोस के मुताबिक 2000-2001 में केशपुर और गरबेटा में भी विपक्ष के लोगों ने ही हिंसा फैलाई थी. राज्य में हिंसा के ताज़ा दौर को देख ममता बनर्जी केंद्रीय हस्तक्षेप की मांग कर रही हैं, पर इस पर विमान बोस एक बांग्ला कहावत सुना रहे हैं- चोरेर मायेर बड़ो गला, यानी चोर की मां की आवाज़ तेज़ होती है. उनका आरोप है कि जो लोग हिंसा फैला रहे हैं, वही क़ानून व व्यवस्था को लेकर चिल्ल-पों मचा रहे हैं. विमान का मानना है कि हिंसा फैलाकर यहां विपक्षी सरकार गिराने के षड्यंत्र में उसी तरह लगे हैं, जिस तरह 1959 में केरल की पहली वामपंथी सरकार गिराई गई थी. उधर, दिल्ली में सीताराम येचुरी ने मोर्चा खोल रखा है. उन्होंने गृह मंत्री से चुनौती भरे लहजे में कहा है कि वह उन ख़ुफ़िया रपटों का ख़ुलासा करें, जिनसे साबित हो सके कि किसने बंगाल को युद्धक्षेत्र बनाया है.

मंगलकोट यानी एक और लालगढ़ !

अभी लोकसभा चुनावों से पहले बर्दवान जिले का मंगलकोट गांव चर्चा में नहीं था. गत 18 जून को लालदुर्ग बर्दवान के मंगलकोट में माकपा नेता फाल्गुनी मुखोपाध्याय का ख़ून हुआ. मंगलकोट माकपा का गढ़ था, पर इसके तीन इलाक़ों-माझीग्राम, निगन और खेरू में विपक्ष का दबदबा क़ायम हो गया है. इनके साथ एक नक्सली गुट भी इलाक़े में सक्रिय है. फाल्गुनी की हत्या के बाद ही हिंसा की आग और भड़की और कुछ तृणमूल समर्थक भी चपेट में आए. जिस इलाक़े में पत्रकारों का प्रवेश भी मुश्किल था, वहां पहले तृणमूल के सुदीप बंद्योपाध्याय व मदन मित्र और बाद में राज्य विधानसभा में विपक्ष के नेता पार्थ चटर्जी ने जाने की कोशिश की, पर कामयाब नहीं हो सके. 16 जून को कांग्रेस के नौ विधायकों ने वहां जाने की बहादुरी दिखाई, पर पत्थरों की बरसात से घायल होकर उन्हें धोती-कुर्ता समेटकर धान के खेतों से होकर भागना पड़ा. कटवा के विधायक के सिर में आठ टांके लगे. अगले दिन कांग्रेस ने बंद बुला दिया, जो इतना कामयाब हुआ कि ख़ुद पार्टी भी अवाक रह गई. तृणमूल ने बंद का सिर्फ़ नैतिक समर्थन किया था और अपने कैडरों को सड़क पर नहीं उतरने को कहा था. बंद के दिन पूरे बंगाल में छिटपुट हिंसा हुई. मंगलकोट के बहाने कांग्रेस की बढ़त बनते देख तृणमूल ने वहां सात अगस्त को जब जनसभा करने का ऐलान किया तो प्रशासन ने निषेधाज्ञा लगा दी. इस पर भी तृणमूल वाले नहीं माने. वहां से पुलिस ने उन्हें डंडे से पीटकर भगाया और अब ममता ने वहां की लड़ाई का मोर्चा ख़ुद संभाल लिया है. ऐसा लग रहा है कि विपक्ष भी बवाल को ज़िंदा रखना चाहता है, नहीं तो कांग्रेसी विधायकों के दौरे या तृणमूल को वहां जनसभा करने की क्या ज़रूरत थी? इस तरह मंगलकोट भी बंगाल का एक और लालगढ़ बन गया है.

ख़ाली हैं पुलिसकर्मियों के 10 हज़ार पद

हिंसा और अपराध रोकने की बात होती है, पर बुनियादी समस्या की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जा रहा है. बंगाल में आबादी के हिसाब से पुलिसकर्मियों का अनुपात साल-दर साल बढ़ता जा रहा है. राज्य के क्षेत्रफल, आबादी और क़ानून व व्यवस्था की हालत का आकलन कर काडर रिविजन की प्रक्रिया वर्षों से नहीं हुई है, हालांकि आईएएस और आईपीएस हलके में यह नियमित रूप से होता रहा है. नियम के मुताबिक काडर रिविजन हर तीन साल में होना चाहिए. यही वजह है कि राज्य में पुलिस और आबादी का अनुपात लगभग दोगुना हो गया है और अपराध बढ़ता ही जा रहा है. वेस्ट बंगाल पुलिस एसोसिएशन ने बार-बार इस संबंध में गृह विभाग को रिपोर्ट सौंपी है. यह विभाग वाम शासन में मुख्यमंत्री के पास ही रहा है. नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के मुताबिक बंगाल में हिंसा में उफान पिछले दो सालों में सबसे ज़्यादा हुआ है. ब्यूरो की 2006 में जारी रिपोर्ट के मुताबिक राज्य के थानों में कुल 75640 मामले दर्ज़ किए गए, जबकि 2007 में यह तादाद 87555 हो गई. पुलिस एसोसिएशन के सूत्रों के मुताबिक राज्य में पुलिसकर्मियों के 10 हज़ार पद ख़ाली हैं. 1951 में राज्य में आबादी और पुलिस का अनुपात 798 : 1 था, जबकि 2008 में यह बढ़कर 1262: 1 हो गया. एसोसिएशन के सूत्रों के अनुसार दूसरे राज्यों में एक लाख की आबादी पर 125 के आसपास पुलिसकर्मियों की तैनाती होती है, जबकि बंगाल में आंकड़ा 70 पर सिमटा हुआ है. इस तरह यहां पुलिसकर्मियों की कुल आबादी 54 हज़ार ही है. पिछले संसदीय चुनावों में राज्य की 294 में से केवल 103 विधानसभा सीटों पर बढ़त लेने वाले वाममोर्चा के हाथ से सत्ता खिसकने का भय सता रहा है और इसी वजह से उसके कैडर और ज्यादा आक्रामक हो गए हैं. जहां तक तृणमूल और कांग्रेस समर्थकों का सवाल है, तीन दशकों से माकपा कैडरों के आतंक के साए में जीने के बाद उनमें बदला लेने की भावना काम कर रही है. पुलिस की भूमिका भी कुछ संदेहास्पद ही लग रही है. राज्य के पूर्व डीजी अमिय सामंत के मुताबिक सरकार और पार्टी का हित जब एक साथ मिल जाता है तभी समस्या की शुरुआत होती है. एक समय था, जब पुलिस माकपा कैडरों के हुक्म से काम करती थी, अब शायद वह उनकी बात नहीं सुन रही है. पुलिस की इस दुविधा के बारे में अमिय बताते हैं कि एक तरफ़ स्थानीय नेता हैं तो दूसरी तरफ़ विपक्ष के केंद्रीय नेता, जो आज मंत्री बन कर उनके इलाक़े में दौरे कर रहे हैं. आज तक पुलिस जिसकी बात सुनती थी, वह पराजित हो गया दिखता है. संभव है कि पुलिस वाले अपने अगले आकाओं को ख़ुश करने की तैयारी में अभी से ही लग गए हों. 1977 में भी पुलिस इसी दुविधा का शिकार हुई थी. माकपा के कैडरों की शिकायत है कि पुलिस कुछ नहीं कर रही है. मगर हक़ीक़त यही है कि पुलिस अब सही मायनों में निष्पक्ष नहीं, निपरेक्ष हो गई है. अराजकता बढ़ने का एक कारण यह भी है. हालांकि यह भी कहना काफी हद तक सही है कि विपक्ष भी आक्रामक और बदले की कार्रवाई पर उतारू है. ऐसे में माना जा रहा है कई इलाक़ों में अगर पुलिस का साथ नहीं होता तो माकपा कैडरों की और दुर्गत होती. अपने ब ड़े भाई माकपा के कारण घटक दल भी सांसत में हैं और हम तो डूबे हैं सनम तुमको भी ले डूबेंगे- वाली कहावत चरितार्थ हो रही है. भाकपा , फारवर्ड ब्लॉक और आरएसपी ने कई बार सरकार की आत्मघाती नीतियों की आलोचना की है और हिंसा के इस दौर से घटक दल भी क्षुब्ध हैं. पिछले आठ अगस्त को मंगलकोट में तृणमूल कार्यकर्ताओं पर पुलिसिया लाठी चार्ज के दौरान साथ में कुछ माकपा कैडरों को भी पथराव करते टीवी पर पूरे देश ने देखा. राज्यपाल क्षुब्ध हों या चिदंबरम, 2011 के विधानसभा चुनावों तक इस हिंसा के थमने की उम्मीद नहीं दिखती.

2006 से 2008 तक 126 बार पुलिस फायरिंग

2006 से 2008 में हिंसा में लगी भीड़ पर गोली चलाने की 126 घटनाएं हुईं. इनमें 129 राजनीतिक कार्यकर्ता मारे गए. नौ जुलाई को विधानसभा में दिए गए मुख्यमंत्री के बयान के मुताबिक इनमें माकपा के 80 नेता और कार्यकर्ता, 12 तृणमूल कार्यकर्ता और 15 कांग्रेसी थे. 2006 में पुलिस फायरिंग की 35 वारदातें हुईं, जबकि 2007 में पुलिस को 50 जगहों पर और 2008 के जुलाई महीने तक उसे 41 जगहों पर फायरिंग करनी पड़ी. मालूम हो कि 14 मार्च 2007 को पूर्व मेदिनीपुर ज़िले के नंदीग्राम में हुई पुलिस फायरिंग में 14 लोग मारे गये थे. राज्य माकपा सचिव विमान बोस का कहना है कि लोकसभा चुनावों की घोषणा के बाद से कम से कम 77 माकपा नेता व कैडर मारे गए हैं.

मंगलकोट में मारे गए माकपा नेता फाल्गुनी मुखर्जी का शव

लालगढ़ में माओवादियों के हाथों मारे गए दो माकपा नेता

खेजुरी फतह : रास्ते पर लहराता तृणमूल का झंडा

feedback@chauthiduniya.com

कांग्रेस को आई अतिपिछड़ों और अतिदलितों की याद

रूबी अरुण

कांग्रेस ने बसपा, सपा और राजद के ख़िलाफ़ अतिपिछड़ा और अतिदलित कार्ड चलने की तैयारी कर ली है. अपने इस अभियान में वह छह महीने से लगी थी. इसके लिए सोशल मैपिंग के काम को भी लगभग पूरा किया जा चुका है. इस महत्वपूर्ण कार्य को अंतिम रूप देने के लिए अब समाजशास्त्रियों की सेवाएं ली जा रही हैं. यह टीम राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के सदस्य रहे ज्यां द्रेज के नेतृत्व में बनी है. कांग्रेस के इस अति महत्वाकांक्षी अभियान की अंतिम रूप रेखा तय करने से पहले राहुल गांधी के निर्देश पर जो सर्वे कराया गया है, उसका नतीजा आश्चर्यजनक है. बिहार और उत्तर प्रदेश में दलितों व पिछड़ों की कुल आबादी में अतिदलितों का प्रतिशत 34 और अतिपिछड़ों का प्रतिशत 20 से 23 है. हैरानी की बात यह कि इन लोगों को सरकारी योजनाओं और आरक्षण का रत्ती भर भी लाभ नहीं मिल रहा. यहां तक कि ये अपनी ही जातियों में उपेक्षित हैं. यह दुर्भाग्यपूर्ण हालात इसलिए हैं, क्योंकि उनका कोई लीडर नहीं हैं. अब कांग्रेस उन्हें न सिर्फ़ राजनीतिक सहारा देगी, बल्कि उन्हीं के बूते बिहार और उत्तर प्रदेश में नीतीश कुमार, लालू प्रसाद यादव, रामविलास पासवान, मायावती और मुलायम सिंह यादव के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त गोलबंदी भी करेगी. इस एजेंडे के तहत जिन अतिदलित और अतिपिछड़े नेताओं की सूची बनी है, उनके साथ राहुल गांधी कई चरणों में बैठक करेंगे. कांग्रेस की इस रणनीति में नरेगा जैसी योजनाओं को प्राथमिकता में रखा गया है. इतना ही नहीं, मायावती की पोल-पट्टी खोलने और उनके दलित वोट बैंक को हथियाने की ख़ातिर दलित उत्पीड़न के तहत दर्ज़ मुक़दमों और वास्तविक रूप से पीड़ित दलितों की सुनवाई न होने वाले प्रार्थना पत्रों को आधार बनाया है. इसमें राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग की वह रिपोर्ट भी शामिल है, जिसमें बताया गया है कि दलित उत्पीड़न के मामले में पूरे देश में सबसे ख़राब रिकार्ड उत्तर प्रदेश का है. नेशनल क्राइम ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक 2008 में दलितों पर सबसे ज़्यादा अत्याचार उत्तर प्रदेश में ही हुए. 2007 में उत्तर प्रदेश में दलितों पर अत्याचार की 6628 घटनाएं हुईं, वहीं 2008 में यह आंकड़ा बढ़कर 6942 हो गया. ख़ास बात यह भी है कि उत्तर प्रदेश की कुल आबादी का 21 प्रतिशत भाग दलितों के हिस्से है.

ख़बर यह भी है कि 20 अगस्त को पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी के जन्मदिन पर ग्रामीण विकास मंत्रालय नरेगा जैसी महत्वाकांक्षी और लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को शानदार जीत दिलाने में अहम भूमिका निभाने वाली योजना का नया नामकरण राजीव गांधी के नाम पर कर सकता है. ताकि अनपढ़, दलित और पिछड़ी जनता को जब इस योजना का लाभ मिले तो वह यह समझने की ग़लती न करे कि यह योजना राज्य सरकार की है. कांग्रेस बख़ूबी जानती है कि नरेगा जैसी योजना से इस वर्ग को अपनी तरफ़ आकर्षित कर वह बिहार और उत्तर प्रदेश में अपनी खोई हुई ज़मीन वापस पा सकती है.

छह अगस्त को लखनऊ में कांग्रेस समन्वय समिति की हुई बैठक में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के महासचिव एवं प्रदेश प्रभारी दिग्विजय सिंह, डॉ. रीता बहुगुणा जोशी, सुल्तानपुर से कांग्रेस सांसद डॉ. संजय सिंह, पूर्व मुख्यमंत्री रामनरेश यादव, सांसद पी एल पूनिया, छह पूर्व प्रदेश अध्यक्ष, केंद्रीय मंत्री जितिन प्रसाद, आर पी एन सिंह, प्रदीप जैन, सलमान ख़ुर्शीद, श्रीप्रकाश जायसवाल आदि ने शिरकत की. इसमें मिशन यूपी यानी चुनाव 2012 की रणनीति इस आधार पर भी तय की गई.

अतिदलितों और अतिपिछड़ों के सहमे-सकुचाए मन को सहलाने और उन्हें कांग्रेस से जोड़ने की कोशिश में समरसता के सिद्धांत पर भी अमल किया जा रहा है. प्रदेश में जगह-जगह दलित बस्तियों में इन जातियों के बीच कांग्रेस सहभोज कर रही है. इस पहल से प्रदेश के अतिदलितों और अतिपिछड़ों को बराबरी का अहसास तो दिलाया ही जा रहा है, साथ ही यह भरोसा भी है कि जब प्रदेश में कांग्रेस की सरकार होगी तो उन्हें दोनों वक़्त पेट भर कर खाना मिलेगा. कोई भूखा नहीं रहेगा. कांग्रेस की इस समरसता योजना को सार्थक और सफल बनाने की ज़िम्मेदारी कभी मायावती के सारथी और बेहद भरोसेमंद नौकरशाह रहे और अब कांग्रेस सांसद पी एल पूनिया को सौंपी गई है. बुज़ुर्ग कांग्रेसी और प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री रामनरेश यादव पर अतिपिछड़ों को कांग्रेस के पाले में लामबंद करने की ज़िम्मेदारी है. उत्तर प्रदेश विधानमंडल दल के नेता प्रमोद तिवारी और उपाध्यक्ष रणजीत सिंह जूदेव प्रदेश कांग्रेस कार्यकर्ताओं के साथ हर दलित बस्ती की खाक छान रहे हैं. सुल्तानपुर से कांग्रेस सांसद डॉ. संजय सिंह बताते हैं कि माया के राज में जिस बर्बर तरीक़े से दलितों का उत्पीड़न बढ़ा है, वह दिल दहला देने वाला है. प्रदेश में लूट, अपराध और बलात्कार की वारदातें चरम पर हैं, पर मुख्यमंत्री मायावती को जनता की सुरक्षा की कोई चिंता नहीं है. वह अपनी सुरक्षा को लेकर ज़रूर चिंतित हैं. यह बड़ी ही शर्मनाक स्थिति है. लोगों के दरवाज़े पर जाकर कांग्रेस इन्हीं तथ्यों को सामने रख रही है.

श्वेत क्रांति बनेगी रोज़गार का ज़रिया

राहुल गांधी की टीम उत्तर प्रदेश और बिहार जाकर इस बात का अध्ययन कर रही है कि वहां के न सिर्फ़ महादलित और महापिछड़े युवाओं को बल्कि सभी जाति के युवकों को अमूल जैसी श्वेत क्रांति की धारा से कैसे जोड़ा जाए. ताकि रोज़गार के लिए भटकते इन दोनों ही राज्यों के युवाओं को स्वरोज़गार से जोड़ा जा सके. इसके लिए राहुल गांधी की टीम ने गुजरात के आणंद जाकर अमूल के सफल मॉडल का अध्ययन भी कर लिया है. अब इस स्वरोज़गार और विकास की सर्वथा नई और बेहद महत्वाकांक्षी योजना का नक़्शा भी बन कर तैयार हो चुका है. कांग्रेस प्रवक्ता मनीष तिवारी बताते हैं कि लोकसभा चुनावों के दौरान जब राहुल गांधी गुजरात में थे, तब उन्होंने वहां अमूल की अपार सफलता को देखा. तभी यह ख़याल आया था कि अगर यह मॉडल बिहार और उत्तर प्रदेश में भी लागू किया जाए तो वहां के बेरोज़गारों की क़िस्मत बदल सकती है. एक टीम को गुजरात भेजकर बारीक़ी से अमूल के माडल का अध्ययन कराया गया. गुजरात में दुग्ध उत्पादन का काम सहकारी समितियां करती हैं और उत्तर प्रदेश व बिहार में भी बड़े पैमाने पर यह काम सहकारी समितियां ही कर रही हैं. लिहाज़ा, यहां भी श्वेत क्रांति की जा सकती है. ज़रूरत पड़ने पर और भी सहकारी समितियां बनाई जाएंगी. इसके अलावा दलित और पिछड़ी जाति के जो युवक मवेशियों को पालने का काम करते हैं, उन्हें सरकारी मदद देकर पशुपालन के लिए भी प्रोत्साहित किया जाएगा. ताकि वे इस श्वेत क्रांति के हिस्सेदार बन सकें.

महिलाओं को राहुल का सुरक्षा वचन

साम, दाम, दंड, भेद. सियासत में जो न हो, सो थोड़ा. दलितों के साथ रात बिताना, उनके साथ खाना खाना-ये सभी तरीक़े राहुल गांधी आज़मा चुके हैं. अब वह एक और अचूक निशाना साध रहे हैं. किसी को भनक तक नहीं लगती और राहुल आधी रात को भी पहुंच जाते हैं महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों से त्रस्त उत्तर प्रदेश के दूर-दराज़ के उपेक्षित गांवों में. वहां वह महिलाओं से बड़ी आत्मीयता से मिलते हैं. उनका सुख-दुख पूछते हैं. उनके हाथ की बनी रोटी खाते हैं. परेशानियों और दुश्वारियों की बाबत पूछते हैं. और जब चकित, हतप्रभ और प्रदेश के शासन से निराश औरतों का दुख लावा बनकर उनकी आंखों से बह निकलता है तो राहुल उनसे अपनी कलाई पर रक्षासूत्र बंधवा कर उन्हें सुरक्षित रखने का वचन देते हैं. उन्हें यह भरोसा देते हैं कि जब तक केंद्र में कांग्रेस का शासन है, तब तक उन्हें फ़िक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं. वे बस, प्रदेश में होने वाले आगामी विधानसभा चुनाव में कांग्रेस का साथ दें. कांग्रेस की सरकार उनकी आबरू और ज़िंदगी की रक्षा करेगी. यह सब तभी हो पाएगा, जब राहुल की धर्मबहनें प्रदेश से मायावती को उखाड़ फेंकें.

राहुल ने इस अभियान का श्रीगणेश छह अगस्त से किया है. लखनऊ में कांग्रेस समन्वय समिति की बैठक में हिस्सा लेने के बाद राहुल बग़ैर किसी ताम-झाम के एक बजे रात में अचानक अपने संसदीय क्षेत्र अमेठी के कंसापुर गांव में पहुंच गए. वहां उन्होंने स्वयं सहायता समूह की महिलाओं से राखी बंधवाई, उनके साथ कढ़ी-चावल और पूरी-सब्ज़ी खाई. राहुल ने उन महिलाओं से यह वादा किया कि उनकी परेशानियों को दूर करने, उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने और उनके विकास के लिए हर संभव कोशिश करेंगे. सुबह के चार बजे तक उनकी परेशानियों को साझा किया और फिर उन्हें आने वाले ख़ुशनुमा समय का सपना दिखा वापस दिल्ली आ गए. स्थानीय प्रशासन तक को राहुल के इस कार्यक्रम की भनक नहीं लगी. राहुल के क़रीबी बताते हैं कि उन्होंने यह जो सिलसिला शुरू किया है, वह आगे भी जारी रहेगा.

माया की शराब नीति भी है निशाने पर

कांग्रेस के मिशन-2012 के एजेंडे में उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती की दोहरी और अवैध शराब नीति भी निशाने पर है. कांग्रेसी कार्यकर्ता झुग्गी-झोपड़ियों में जा कर दलितों-पिछड़ों को यह तथ्य समझाने में लगे हैं कि माया अपनी झोली भरने की ख़ातिर किस हद तक गिर कर ग़रीबों के हितों से खिलवाड़ कर रही हैं. कांग्रेस नेता और पूर्व मुख्यमंत्री रामनरेश यादव कहते हैं कि प्रदेश में देसी ठेकों का जाल बिछा दिया गया है. अवैध ठेके भी धड़ल्ले से चल रहे हैं. इससे ग़रीबों में नशाखोरी की प्रवृत्ति बढ़ रही है. माया सरकार को इससे फ़ायदा यह है कि देसी दारू के सरकारी और अवैध ठेके हर बोतल को दो रुपये अतिरिक्त चार्ज के साथ बेचते हैं. प्रति बोतल सरचार्ज जैसे ये अतिरिक्त दो रुपये मुख्यमंत्री के खाते में जाते हैं. मायावती अपना ख़ज़ाना भरने की फिराक़ में ग़रीबों की ज़िंदगियों के साथ खिलवाड़ कर रही हैं. कांग्रेस सांसद डॉ. संजय सिंह का आरोप है कि इस दोहरी नीति से मायावती को हर साल 600 करोड़ रुपये की अवैध कमाई हो रही है. इसी तरह, अंग्रेज़ी शराब की हर बोतल पर दर्ज़ एमआरपी से पांच से बीस रुपये तक की अवैध रूप से अतिरिक्त वसूली की जा रही है. इससे हर दिन दो करोड़ रुपये से ज़्यादा की कमाई हो रही है. न सिर्फ़ शराब बल्कि रोज़मर्रा की बेहद ज़रूरी चीज़ों पर भी सरकार का यही रवैया है. अनाज़ के बोरों पर, खाद्य वस्तुओं पर, हर जगह लूट-खसोट और अराजकता है. फुटकर शराब व्यापारियों ने तो इस मसले पर अदालत का दरवाज़ा भी खटखटाया है. अब वे इस मसले को लेकर सुप्रीम कोर्ट जाने की तैयारी में हैं. संजय सिंह कहते हैं कि इससे दुर्भाग्यपूर्ण क्या होगा कि दलित और महिला मुख्यमंत्री के राज में दलितों और महिलाओं का हश्र इतना बुरा हो. यह प्रदेश की विडंबना ही तो है.

ज़ाहिर है, कांग्रेस मिशन-2012 के तहत अतिदलित और अतिपिछड़ों की उपेक्षा के ज़रिए माया के ख़िलाफ़ उन तमाम मुद्दों को उछालने वाली है जो उनके सिंहासन को हिला दे और कांग्रेस के लिए रास्ता साफ कर दे.

नज़र बिहार पर भी

दलित उत्पीड़न के मामले में बिहार की स्थिति भी काफी भयावह है. महादलित आयोग का गठन कर दलितों के उद्धार का दंभ भरने वाले मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के राज में भी दलितों पर अत्याचार का सिलसिला थमा नहीं है. 2008 में बिहार में दलितों पर अत्याचार के 2786 मामले दर्ज़ हुए. बिहार महादलित संघ के अध्यक्ष विश्वनाथ ऋषि कहते हैं कि ये जो आंकड़े हैं, वे हक़ीक़त से परे हैं. दलितों पर वास्तव में जिस तादाद में अत्याचार होते हैं, वे आंकड़े तो प्रकाश में आते ही नहीं.

बहरहाल, कांग्रेस की नज़र फ़िलहाल महादलित और महापिछड़ी जातियों के नाम बिहार में मचे दंगल पर है. नीतीश कुमार, लालू प्रसाद यादव और लोजपा अध्यक्ष रामविलास पासवान के बीच दलितों का हिमायती बनने की जंग में कांग्रेस अपनी शह का रास्ता तलाश रही है. बिहार प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष अनिल शर्मा कहते हैं कि दलित और पिछड़ी जातियों का समग्र विकास कांग्रेस की प्राथमिकताओं में है. सही वजह है कि कांग्रेस बिहार में दलित और पिछड़ी जाति के युवकों को पार्टी से जोड़ने का प्रयास कर रही है. ताकि इस वर्ग को समुचित राजनीतिक नेतृत्व मिल सके.

ruby@chauthiduniya.com

मीडिया वाच

मीडिया को भटकने से रोकना ही होगा

पत्रकारिता का उद्देश्य जनता को सूचना पहुंचाना तो है ही, साथ ही यह सुनिश्चित करना भी है कि यह सूचना बिना पक्षपात और दबाव के जनता तक पहुंचे. यह उसका कर्तव्य भी है. हाल के समय में मीडिया पर ऐसे आरोप लगे हैं जिससे उसका यह उद्देश्य धूमिल हुआ है. कुछ मीडिया संगठनों के द्वारा लोकसभा चुनावों में पैसे लेकर ख़बरें छापने का मुद्दा ज़ोर-शोर से उठा है. इसी मुद्दे पर चर्चा के लिए दिल्ली के केरल हाउस में डीयूजे (दिल्ली यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स)-डीएमआरसी की ओर से एक सेमिनार किया गया, जिसका विषय था-चुनाव 2009 में धनशक्ति और मीडिया (मनी-पावर एंड मीडिया इन इलेक्शन 2009).

सेमिनार में आम सहमति बनी कि देश में मीडिया लोक नागरिक अभियान (पब्लिक विजिलेंस ऑन मीडिया) की रूपरेखा तैयार हो और इसे जन आंदोलन का रूप दिया जाए. वरिष्ठ पत्रकार और जनसत्ता के पूर्व संपादक प्रभाष जोशी ने कहा कि देश में मीडिया की निष्पक्षता बरकरार रखने के लिए एक जन-आंदोलन बहुत ज़रूरी है. यदि ऐसा नहीं हुआ तो यह सब सिर्फ़ अरण्य-रोदन भर होगा. पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति पर चिंता जताते हुए उन्होंने याद दिलाया कि पत्रकारिता जनता के हाथ में एक ऐसा अंकुश है, जिसके ज़रिए वह लोकतांत्रिक समाज के सभी स्तंभों की पड़ताल कर सकती है. उन्होंने कहा कि आज के मीडिया में पैसे लेकर ख़बर छापने का चलन बढ़ रहा है, लेकिन ज़रूरी है कि जनता को बेवकूफ न बनाया जाए. अगर कोई ख़बर पैसे लेकर छपी हो तो कम-से-कम उस पर साफ-साफ लिखा हो कि यह ख़बर नहीं विज्ञापन है. जहां तक उम्मीदवारों से पैसे लेकर ख़बरें छापने की बात अगर सच है तो चुनाव आयोग इस ख़र्च को उम्मीदवार के चुनावी ख़र्चे में जोड़ दे. उन्होंने कई ऐसे उदाहरण दिए जहां उनके पास पैसे के लिए ख़बर छापने की बात आई थी. उन्होंने यह भी कहा कि कई पत्रकार हैं जो यह करना नहीं चाहते, लेकिन मजबूरी में ऐसा कर रहे हैं. इस मौके पर वरिष्ठ पत्रकार निहाल सिंह ने कहा कि इस तरह के मीडिया संगठनों के ख़िलाफ़ जनता की राय क़ायम करनी होगी. इसके लिए कोई नया संसाधन जुटाने की चिंता करने के बजाय सहज उपलब्ध इंटरनेट पर ट्विटर और यूट्यूब जैसे माध्यमों के ज़रिए आंदोलन खड़ा किया जाए.

फोटो- प्रभात पाण्डेय

डीयूजे के अध्यक्ष एसके पांडेय ने कहा कि पिछले आम चुनाव में मीडिया के धनशक्ति के इस्तेमाल पर हमने प्रभाष जोशी के चार लेख प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया के सामने रखे. अब उस पर तहक़ीक़ात, उपाय और निदान के लिए भारतीय प्रेस परिषद ने दो सदस्यीय विशेष समिति बना दी है. हम अब संसद के अंदर और बाहर इस मसले को उठाने जा रहे हैं. लोकतंत्र के इस चौथे स्तंभ की ईमानदारी व निष्पक्षता बनाए रखने के लिए ज़रूरी है कि इससे जुड़े अख़बारी व ग़ैरअख़बारी कर्मचारियों को साथ लिया जाए. वर्किंग जर्नलिस्ट एक्ट, वेतन और कार्य संबंधी स्थितियों को भी इसमें शामिल किया जाए. मीडिया जनांदोलन को समर्थन देते हुए उन्होंने कहा कि एक व्यापक साझा मंच बने और सभी संगठन उसमें शामिल हों. उन्होंने बताया कि डीयूजे व्यापक हस्ताक्षर अभियान, नुक्कड़ बैठकें और ऑनलाइन संवाद आदि शुरू करने जा रहा है. डेढ़ माह बाद इस मामले में हुई प्रगति का फिर जायज़ा लिया जाएगा.

भारतीय प्रेस परिषद की ओर से आम चुनाव में मीडिया में पैसे के इस्तेमाल के मामलों की जांच पड़ताल के लिए गठित विशेष समिति के एक सदस्य प्रणंजय गुहा ठाकुरता ने कहा कि राजनीति और मीडिया के बीच गहराते अंतरसंबंध तब और ख़तरनाक हो जाते हैं, जब इससे पैसे वाली ताक़तें जुड़ने लगें. सेंटर ऑफ मीडिया स्टडीज के प्रभाकर ने सर्वे के आधार पर चुनावों में पैसे के इस्तेमाल का एक लेखा-जोखा पेश किया. उनके सर्वे के मुताबिक भारत में बड़ी संख्या में लोग पैसे लेकर वोट करते हैं. मीडिया पर भी पैसे का प्रभाव साफ है.

वरिष्ठ पत्रकार संतोष भारतीय ने कहा कि कभी गांवों तक में माना जाता था कि अख़बारों में जो छपता है वह सच होता है, लेकिन आज अजब स्थिति हो गई है. प्रेस परिषद से अलग राह बनाने पर भी सोचा जाना चाहिए, क्योंकि यह संस्था नख-दंत विहीन है. उसके पास कोई अधिकार नहीं हैं. उन्होंने सवाल उठाया कि आख़िर मीडिया की इस स्थिति को कैसे बदला जा सकता है. सेमिनार में वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व सांसद कुलदीप नैयर और भारतीय प्रेस परिषद के सदस्य शीतला सिंह के संदेश पढ़े गए. तहलका से जुड़े अजीत साही, वरिष्ठ पत्रकार अंजलि देशपांडेय, सुनीत चोपड़ा आदि ने भी इस चर्चा में भाग लिया.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

नए वन क़ानून से भी नहीं बन रही बात

उमाशंकर मिश्र

जल, जंगल और ज़मीन को सदियों से वनवासियों ने सहेज कर रखा, ताकि सभ्यता फलती-फूलती रहे. यह विडंबना है कि तथाकथित सभ्यता के नुमाइंदे आज जंगल में रहने वाली लाखों जनजातियों को उनकी जड़ से ही नहीं, बल्कि जीवन से भी जुदा करने पर तुले हुए हैं. जंगल में रहने वाली जनजातियों के हक़ को सुनिश्चित करने के लिए वनाधिकार अधिनियम 2006 बनाया गया. इसके बावजूद, आज़ादी के 60 साल बाद भी वनों के नैसर्गिक वासियों को अपने ही देश की सामंती व्यवस्था के हाथों प्रताड़ित होना पड़ रहा है.

इतना जनता क्यों आए हो, का काम है?
क्यों नहीं आएंगे साब, घर में जाए के मरवाओ सबरी जनता ला.

मोहगांव की बैगा आदिवासी महिला बनिहारोबाई ने बिछिया थाने में पुलिस अधिकारी से दहाड़ते हुए कहा. यह सब बताते हुए बनिहारोबाई अत्यंत उत्तेजित हो जाती है और पास ही पड़े बांस के टुकड़ों को उठाकर इस तरह से लहराने लगती है, मानो वन विभाग का कोई नुमाइंदा यदि सामने होता तो उसकी ख़ैर नहीं थी.

बात 17 जुलाई 2009 की है. शाम को क़रीब चार बजे मध्य प्रदेश के मंडला जिले के बिछिया ब्लॉक की उमरवाड़ा पंचायत के मोहगांव के बढ़ई टोला की रहने वाली सुनीता घर से क़रीब 100 मीटर की दूरी पर बरगद के पेड़ के नीचे बच्चे को लेकर बैठी थी. पास में ही अन्य पांच महिलाएं चकोड़ा भाजी तोड़ रही थी. इतने में ही वन विभाग के 24 लोगों का जत्था बैगा एवं गोंड आदिवासियों को जातिगत संबोधनों से गरियाते हुए वहां पहुंच गया. इनमें दो महिला सिपाहियों समेत रेंजर एवं डिप्टी रेंजर भी थे. उसी स्थान पर हाल ही में काट कर लाए गए कुछ बांस पड़े थे, जिसे वन विभाग के लोगों ने काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया. सुनीता, संपत और लच्छी समेत जो भी बाहर थे, डर के मारे सब भागकर घर में छुप गए.

भगदड़ में किसी की चप्पल छूट गई, तो उसे भी कुल्हाड़ी से काट डाला गया. पास की झोपड़ी पर लटकी चादर को भी वे काटने वाले थे कि डिप्टी ने रोक दिया. संपत बैगा ने टोकना (टोकरी) बनाने के लिए बांस का सरेगा तैयार किया था, जिसे वन विभाग के लोग उठा ले गए. संपत ने बताया कि उससे क़रीब 20 टोकने बनाए जा सकते थे, जिससे 600 रुपये तक की आमदनी हो जाती. संपत का अपना घर भी नहीं है और वह ससुर के घर में गुजर-बसर कर रहा है. चकोड़ा भाजी तोड़ रही छह महिलाएं- सेववती, सुनीता, सुगवती, इंद्रवती, दीनवती और रेवती अफरा-तफरी में भाग नहीं पाई. उन्हें वन विभाग के कर्मचारियों ने क़रीब एक किलोमीटर जंगल में दौड़ाकर पीछा किया. अंततः इन महिलाओं ने एक घर में जाकर शरण ली. वहां भी वे लोग पहुंच गए और घर के मालिक से पूछताछ की तो उसने महिलाओं के वहां होने की बात से इंकार कर दिया. जनसंघर्ष मोर्चा से संबद्ध विवेक पवार इस मामले को गंभीरता से लेते हुए कहते हैं कि, यदि वे महिलाएं वन विभाग के लोगों को मिल जातीं तो न जाने वे इनके साथ कैसा बर्ताव करते. सेववती बताती हैं कि वे लगातार जातिगत संबोधनों से गाली देते हुए हमारा पीछा कर रहे थे. बहरहाल कहानी अभी ख़त्म नहीं हुई थी. जब महिलाएं उन्हें नहीं मिलीं तो उन्होंने कुछ ही दूरी पर बैल चराने गए सुग्रीव और महेश की ओर रुख़ किया. गांव के अन्य मवेशी भी वहीं चर रहे थे, जिनकी संख्या लगभग 25 थी. उन दोनों से पूछा गया- यहां क्या कर रहे हो? इतने में महेश को दो कर्मचारियों ने पकड़ लिया और लट्ठ, थप्पड़ व लात-घूंसों से पीटने लगे. वहां चर रहे मवेशियों को खदेड़ दिया गया. इसके चलते सुग्रीव के बछड़े की अगले दिन मौत हो गई. इस बीच सुग्रीव ने दौड़ कर बढ़ई टोला में महेश की पिटाई की सूचना गांव वालों को दे दी. इस पर गांव वालों का ख़ून खौल गया. बच्चे, बूढ़े और जवान सभी निहत्थे ही वन विभाग के कर्मचारियों की ओर लपक पड़े. क़रीब पांच किलोमीटर तक जंगल में मोहगांव के लगभग 50 लोगों ने वन विभाग के कर्मचारियों के अत्याचार का बदला लेने के लिए उनका पीछा किया. इस बीच गांव वालों का सामना कोर एरिया के गश्ती दल से हो गया. इससे पहले कि गांव वाले उन पर पिल पड़ते, महेश और सुग्रीव ने उन्हें पहचानते हुए कहा कि ये वे लोग नहीं हैं. फिर गांव वाले आगे बढ़ गए और अंततः उन्होंने एक डिप्टी रेंजर को पकड़ कर धुन दिया.

बात 17 जुलाई 2009 की है. शाम को क़रीब चार बजे मध्य प्रदेश के मंडला जिले के बिछिया ब्लॉक की उमरवाड़ा पंचायत के मोहगांव के बढ़ई टोला की रहने वाली सुनीता घर से क़रीब 100 मीटर की दूरी पर बरगद के पेड़ के नीचे बच्चे को लेकर बैठी थी. पास में ही अन्य पांच महिलाएं चकोड़ा भाजी तोड़ रही थी. इतने में ही वन विभाग के 24 लोगों का जत्था बैगा एवं गोंड आदिवासियों को जातिगत संबोधनों से गरियाते हुए वहां पहुंच गया. इनमें दो महिला सिपाहियों समेत रेंजर एवं डिप्टी रेंजर भी थे. उसी स्थान पर हाल ही में काट कर लाए गए कुछ बांस पड़े थे, जिसे वन विभाग के लोगों ने काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया. सुनीता, संपत और लच्छी समेत जो भी बाहर थे, डर के मारे सब भागकर घर में छुप गए.

महेश की मां छोटीबाई ने बताया कि घटना से पहले वन विभाग के चार कर्मचारियों ने आंगन में घुसकर पानी मांगा और वहीं बैठकर दारू पीकर निकले थे. सुक्कल, महेश और हरि सिंह ने बिछिया थाने में जाकर जनसंघर्ष मोर्चा के कार्यकर्ताओं की मौजूदगी में वन विभाग की ज़्यादतियों के ख़िलाफ़ मामला दर्ज़ कराया. दो दिन बाद भी पुलिस घटनास्थल की जांच के लिए नहीं पहुंची थी. यही नहीं, महिलाओं को प्रताड़ित करने के ख़िलाफ़ भी रिपोर्ट नहीं लिखी गई.

मोहगांव कान्हा के बफर क्षेत्र में बसा राजस्व ग्राम है. विवेक पवार कहते हैं कि, बफर क्षेत्र में सीमित गतिविधियों की छूट स्थानीय लोगों को दी गई है. पहले तो कोर क्षेत्र की सीमा से पांच किलोमीटर तक बफर क्षेत्र घोषित किया गया था, लेकिन बिना किसी अधिसूचना के बफर क्षेत्र फैल रहा है और आदिवासियों के घर, ज़मीन, खेत और अन्य संसाधनों को लगातार निगल रहा है. कई गांवों में तो कोर क्षेत्र की सीमा भी पहुंच गई है. लघु वनोपज जंगल में रहने वाले आदिवासियों के जीवन का आधार रहा है. वनाधिकार अधिनियम 2006 के मुताबिक बांस समेत पुटु पिहरी, मोहलाईन पत्ता, चकोड़ा भाजी, कांदा, छिंदी (झाड़), तेंदू, चारबीजी, करुकांदा, बैचांदी एवं कन्हिया कांदा, बेंत, शहद, जलाने की लकड़ी, औषधीय पौधे, पेड़ के ठूंठ टसर, फल, जलाशयों की मछली, केकड़े, जलीय पौधे, पत्थर, स्लेट, गिट्टी, मुरुम जैसे अनेक वनोत्पाद के निस्तार की छूट स्थानीय जनजातियों को दी गई है. लेकिन वन विभाग की सामंती सोच का समय-समय पर आदिवासियों को इसी तरह शिकार बनना पड़ता है और उन्हें शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना का दंश झेलना पड़ता है. मोहगांव वैसे तो राजस्व ग्राम है, इसके बावजूद गांव की सीमा के भीतर वन विभाग के मुनारे (स्तंभ) गड़े हुए हैं. इनमें से कई मुनारे तो दशकों से बने आदिवासियों के घरों के सामने और खेतों में भी गड़े हैं. यहां भी सामंतवादी व्यवस्था के झंडाबरदारों ने रेंजर्स एवं डिप्टी रेंजर्स की करनी की सज़ा फायर वॉचर्स के सिर मढ़ दी और तीन फायर वॉचर्स को हटा दिया गया. बाद में सात अन्य आदिवासियों को वन्य प्राणी अधिनियम 1972 के तहत गिरफ़्तार कर लिया गया. हालांकि स्थानीय प्रशासन ने भी वन विभाग की ज़्यादती की बात को स्वीकार किया है.

हाल ही में मध्य प्रदेश में मंडला जिले के पर्यटन ग्राम चौगान में जाना हुआ. वहां स्थानीय कान्हा की सीमा में बसे आदिवासियों को जब पता चला कि कोई पत्रकार दिल्ली से आया है तो वे दिन भर खेतों में काम करने के बाद रात को मुझसे मिलने रमपुरी टोला आ पहुंचे. इन सबकी व्यथा ज़मीन के पट्टे को लेकर थी. आसपास के गोंड एवं बैगाओं समेत क़रीब एक दर्जन लोग ज़मीन पर हक़ की बात रखने के लिए आए थे. रमपुरी टोला के ही 55 वर्षीय शंकरलाल बताते हैं कि हमारी ज़मीन अधिक उपजाऊ नहीं है, मक्का एवं राई थोड़ी-बहुत पैदा होती है. वह आगे कहते हैं कि हमने जुर्माना भी दिया, लेकिन पट्टा नहीं मिला. शंकर लाल, कलीराम, संपत लाल, नवल सिंह, डमरा सिंह, डमार सिंह, चमरा लाल और दयाली समेत कई आदिवासियों की व्यथा कुछ इसी तरह की थी. उनका कहना था-हम डर के मारे अपने घर और ज़मीन में कोई सुधार नहीं करते कि न जाने कब वन विभाग की गाज हम पर गिर जाए.

feedback@chauthiduniya.com

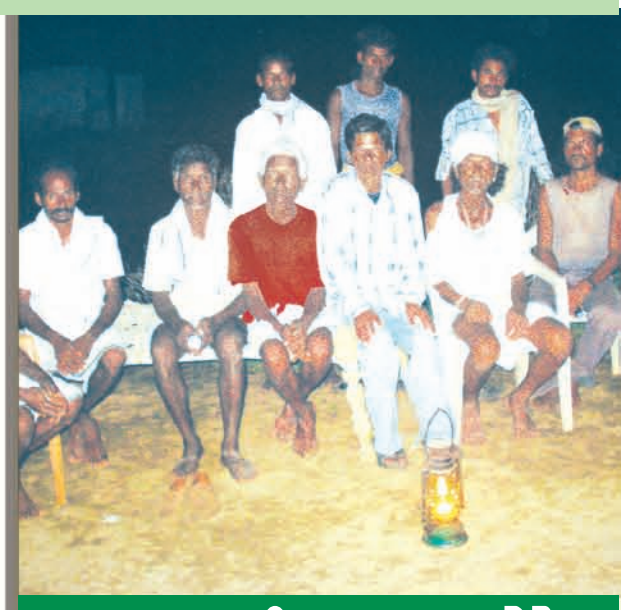

जड़, जंगल और ज़मीन का संघर्ष

आदिवासी पीढ़ियों से वनों में निवास करते रहे हैं, लेकिन उनके समक्ष पट्टे की समस्या हमेशा से रही है. इस समस्या को वर्ष 2006 में केंद्र सरकार ने आदिवासी वनाधिकार अधिनियम पारित कर दूर करने का प्रयास किया है. पट्टे के लिए एक दावा प्रारूप तैयार किया गया है. इस क़ानून को लागू कराने की ज़िम्मेदारी प्रखंडस्तरीय समिति की रहती है.

देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के ठीक पांच साल बाद 1862 में अंग्रेजी हुकूमत ने वन विभाग की स्थापना की. यह धारणा सही नहीं है कि वन विभाग की स्थापना का उद्देश्य वनों एवं बाघों की रक्षा के लिए किया गया था, बल्कि इसके गठन से अंग्रेजों को उपनिवेशवाद सशक्त करने के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए एक मशीनरी उपलब्ध हो गई. सरकार ने ख़ुद कानून बनाकर ख़ुद को ही संसाधनों का मालिक घोषित कर दिया. इस तरह से सदियों से जंगल में रहने वाले आदिवासियों की बेदखली का सिलसिला शुरू हो गया. विकास, वन संरक्षण, जंगली जानवरों की सुरक्षा और पर्यावरण के नाम पर आदिवासियों को अतिक्रमणकारी कहा गया. दूसरे मायने में देश की एक बड़ी जनसंख्या को यहां रहने का क़ानूनी हक़ नहीं दिया गया.

हमेशा से आदिवासियों को वनों से बाहर करने के लिए तर्क दिया जाता रहा है कि वे जंगल और अन्य वन्य प्राणियों को नुक़सान पहुंचाते हैं. जबकि सच तो यह है कि वन विभाग और नेशनल पार्कों के गठन के बाद न केवल पर्यावरणीय क्षति हुई है, बल्कि जंगली जानवरों के शिकार में भी तेज़ी आई है. बाघों की संख्या में गिरावट अधिक तेज़ी से बढ़ी और ठीक इसी तर्ज पर जंगलों का भी सफाया अंधाधुंध तरीक़े से किया गया. अब जबकि भारत सरकार ने अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम लागू कर दिया है, इसके बावजूद भी आदिवासियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है.

इस क़ानून के तहत ग्रामसभाएं अब वन्य जीव, वन और जैव विविधता के साथ-साथ पानी के स्रोतों की सुरक्षा करने के लिए नीतिगत तौर पर सशक्त हैं. लेकिन ज़मीनी स्तर पर अभी काफी कसर बाक़ी है. ग्रामसभाएं किसी भी ऐसी कोशिश या काम को रोकने के लिए सशक्त हैं, जिनमें वनों, जानवरों या जैव विविधता को नुक़सान पहुंचता है. इस क़ानून के तहत पहली बार ग्रामसभा को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए गांव में वनाधिकार समिति बनाने का अधिकार दिया गया है. किसी भी क़ानून में वन संरक्षण के लिए उसे एक ताक़तवर समिति के तौर पर देखा जा रहा है. लेकिन जिस तरह से ग्रामसभाओं का क्रियान्वयन एक समस्या रही है, उसी तरह वनाधिकार समितियों को भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है. कई मामलों में तो इन समितियों के संचालन के लिए बजट की समस्या भी सामने आई हैं. मंडला जिले की उमरवाड़ा पंचायत में कुछ इसी तरह का मामला सामने आया है.

वनाधिकार अधिनियम-2006 के मुताबिक 13 दिसंबर 2005 के पहले जिस किसी का भी वनभूमि पर क़ब्ज़ा हो उन परिवारों को हक़ मिलेगा. इसके अलावा आदिवासियों के साथ ही दूसरे वनवासियों जैसे-ढीमर, हरिजन, लुहार, कतिया, गोली पारथी आदि समुदायों को भी वन भूमि पर हक़ मिलेगा. आदिवासियों के अलावा अन्य वनवासियों को सबूत देना पड़ेगा कि उनके परिवार तीन पीढ़ियों यानी 75 साल से वहां रह रहे हैं. यह क़ानून आरक्षित वन, संरक्षित वन, ग़ैर वर्गीकृत वन, संयुक्त वन प्रबंधन, वन ग्राम, राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य के साथ-साथ नारंगी भूमि, छोटा झाड़ और बड़े झाड़ के जंगलों में लागू होता है. पानी, चारे, लघु वनोपज, आने-जाने का रास्ता या जड़ी बूटियों के निस्तारण की बात इसमें कही गई है. यह क़ानून कहता है कि आदिवासियों को न केवल आजीविका का अधिकार मिल रहा है, बल्कि उन्हें पूरे जंगल के प्रबंधन का भी ज़िम्मेदारीपूर्ण अधिकार दिया गया है जो परंपरागत तौर पर समुदाय का रहा है. वनाधिकार क़ानून कहता है कि जहां भी 13 दिसंबर 2005 से पूर्व जो आदिवासी या अन्य वनवासी निवास कर रहे हैं और सही एवं क़ानूनी पुनर्वास किए बिना अवैध रूप से बेदखल या विस्थापित किया गया है तो उन्हें वैकल्पिक भूमि पर क़ानूनी हक़ दिए जाने चाहिए.

उ. मि.

feedback@chauthiduniya.com

समानता और मानव विकास

अबुसालेह शरीफ

मानव विकास का विचार अर्थशास्त्र से संबंधित विचारों की तरह ही पुराना है. हालांकि इसका परिमाणात्मक अध्ययन हाल की ही देन है. मानव विकास की धारणा का मूल हम पूर्वी समाजों में देख सकते हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य हमेशा ही पोषण, रहने की जगह और सामाजिक सौहार्द को बनाए और उसे बढ़ाने का रहा है. यहां तक कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र जैसे पुराने ग्रंथ में भी मानव विकास का उल्लेख देखने को मिल जाता है, जब वह प्रशासनिक व्यवस्था की चर्चा करते हैं. शासन के तरीक़े से ही जनसंख्या के सभी तबकों को एक निश्चित मानक तक कल्याणकारी लाभ पहुंचाया जा सकता है. इसी तरह एडम स्मिथ की *वेल्थ ऑफ नेशंस* में भी इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि शिक्षा के साथ ही अन्य सामाजिक क्षेत्रों में भी निवेश किया जाए, क्योंकि केवल मुनाफ़े को ध्यान में रखकर चलने वाले निजी व्यावसायिकों से यह उम्मीद नहीं रखी जा सकती कि वे इन क्षेत्रों में पर्याप्त निवेश करें. स्मिथ ने अपने सिद्धांत के मूल में आम आदमी को रखा है और वह चेताते हैं कि व्यवस्था की ख़ामियां साझा हितों को ही नुक़सान पहुंचा सकती हैं.

किसी भी देश में एक दिए गए समय में कुल उत्पाद का आर्थिक मूल्य पारंपरिक तौर पर ऐसी प्रक्रिया से तय किया जाता है, जो घरेलू उत्पाद को बाज़ार में मिलने वाले मूल्य के तहत आंकता है. किसी भी देश की प्रगति और इसका आर्थिक विकास इसी वजह से मौद्रिक संदर्भों में मापा जाता है, जिसे विभिन्न देशों के बीच तुलनात्मक तौर पर समझा जाता है. जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) या एनएनपी (कुल राष्ट्रीय उत्पाद) को राष्ट्रों की संपत्ति और आर्थिक विकास को समझने में सहायक माना जाता है. माप के इस तरीक़े की ख़ामियां भी समय-समय पर विभिन्न देशों के तुलनात्मक अध्ययन के दौरान उजागर हुई हैं. विद्वानों ने बताया है कि यह एकपक्षीय अध्ययन कई वजहों से किसी भी समाज की उपलब्धि या कमी को पूरी तरह से ज़ाहिर नहीं कर सकता-ख़ासकर बात अगर आम जनता को कल्याणकारी योजनाएं मुहैया कराने की हो तो. इन ख़ामियों के बावजूद, देशों के बीच तुलना सकल घरेलू उत्पाद के आंकड़ों के आधार पर ही होती है. बहुपक्षीय और द्विपक्षीय एजेंसियों के बीच यह काफी आम बात है, ताकि वह अपनी विकास परियोजनाओं के लिए रणनीति और रास्ता तैयार कर सके. जिससे अलग क्षेत्रों के बीच और जनसंख्या के हरेक तबके में समानता लाई जा सके. इन तुलनाओं की एक ख़ामी यह भी है कि विकास को बहुआयामी और बहुरूपी दृष्टिकोण में समझने की ज़रूरत है. इसे आजकल नीति निर्धारक और पूरी दुनिया के शोधकर्ता अच्छी तरह समझ रहे हैं. ज़ाहिर है, इसी वजह से कई तरह के सूचकों पर विचार करने की ज़रूरत महसूस होने लगी है, ताकि विकास के अलग-अलग पहलुओं पर विचार कर एक समेकित तालिका बनाई जा सके. विकास संबंधी नीति की ज़रूरत ज़ाहिर तौर पर एक मज़बूत प्रेरक साबित हुआ है, जिसमें समेकित सूचकों को ध्यान में रखा जाता है. मानव विकास रिपोर्ट (एचडीआर) के प्रकाशन के साथ ही इस तरह की क़वायद को बड़ा बल मिला है. जिस तरह अलग-अलग देशों और उनके अलग क्षेत्रों में इस रिपोर्ट का स्वागत हुआ है, वह इसकी सार्थकता को साबित करता है. वर्तमान में समग्र सूचक अलग-अलग सामाजिक और मानवीय विकास के विविध पहलुओं को दिखाते हैं और वह समन्वय का एक अलग स्तर बनाने में मदद करते हैं.

भारत में आठवीं पंचवर्षीय योजना (1997-98) में ही मानव विकास को संपूर्ण लक्ष्य के तौर पर स्वीकार कर लिया गया था. इसने रोज़गार बढ़ाने, जनसंख्या नियंत्रण करने, अशिक्षा मिटाने, सबको प्राथमिक शिक्षा दिलाने, स्वच्छ पेयजल मुहैया कराने और प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं देने का लक्ष्य रखा. लेकिन अपने विकास के बावजूद भारत को अभी भी बहुत कुछ करना बाक़ी है, क्योंकि इसकी एक तिहाई जनसंख्या अब भी निरक्षर है, लैंगिक भेदभाव मौजूद है. औसत उम्र सापेक्षिक तौर पर कम (61 वर्ष) है. कुपोषण का जाल फैला हुआ है. इसके साथ ही एनीमिया, स्वच्छ पेयजल की कमी और बाक़ी मूलभूत सुविधाओं की कमी तो है ही.

वृद्धि बनाम विकास

एनएनपी का विशद विश्लेषण दिखाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में सड़ांध 1990 के दशक के अंत तक पैदा नहीं हुई थी. हालांकि अगर यह पता भी चल जाए कि सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी की वृद्धि दर तेज़ हुई है या रफ़्तार पकड़ रही है, फिर भी वह कोई बहुत बड़ी सामाजिक उपलब्धि नहीं है. इसी संदर्भ में आर्थिक वृद्धि और विकास केवल साधन है, साध्य तो सामाजिक विकास है. वृद्धि बनाम विकास की बहस और इसमें जनसंख्या का एक कारक होना दरअसल उतनी ही पुरानी बहस है जितना पुराना ख़ुद आर्थिक चिंतन. इसके अलावा संतुलित बनाम असंतुलित का मसला भी है लेकिन प्रमुख इकाइयों की तेज़ वृद्धि, विविध इकाइयों के बीच आपसी संबंध और अलग क्षेत्रों में पूंजीगत मुनाफ़े को बराबर करने जैसे मसलों पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए. कई चिंतकों ने लगातार बनी हुई असमानता के मूल कारण और उसके ढांचे को समझने की कोशिश की है. इसी वजह से वितरण को लेकर सचेत रहना भी वृद्धि की तरह ही अहम है. एक विशुद्ध आर्थिक निर्णय कई विकासशील देशों ख़ासकर भारत के लिए सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही परिदृश्य पेश कर सकता है. यह एक आम सी बात है कि हम जीडीपी के स्रोत को तीन भागों-प्राथमिक (अधिकतर कृषि संबंधी), द्वितीयक (अधिकतर निर्माण संबंधी) और तृतीयक (अधिकतर सेवाएं) में बांट देते हैं. स्वाधीनता के तुरंत बाद इनका शेयर आनुपातिक तौर पर 59:13:28 था कि जो अब बदल कर 24:25:51 हो गया है.

यह वैश्विक संदर्भ के अनुकूल है और यह एक तरह से नीति निर्धारण और अंतरराष्ट्रीय विकास कार्यकर्ताओं में एक तरह के आलस्य को बढ़ावा दे रहा है. हालांकि कामगार वर्ग का शेयर बहुत छोटे स्तर पर ही बदला है. हरेक क्षेत्र में यह पहले के 74:11:15 से बदलकर 57:18:25 हो गई. इस तरह संगठित निर्माण और सेवा क्षेत्र में एक छोटे तबके को आय के मामले में थोड़ा लाभ पहुंचा है. यह भी महसूस किया गया कि हालांकि संगठित क्षेत्र में रोज़गार बढ़ रहा है, लेकिन पूर्ण रोज़गार में इसका शेयर घटता जा रहा है. (देखें तालिका-1)

दूसरी सच्चाई यह भी है कि हालांकि श्रम (ग्रामीण और शहरी दोनों) की उत्पादकता कुछ महीनों में स्थिर और मुद्रास्फीति की दर के अनुकूल है, लेकिन प्रति श्रम इकाई की सापेक्षिक उत्पादकता का अनुपात 1:3.4:4.2 (देखें तालिका -1) होना यही दिखाता है कि सामाजिक समानता और आर्थिक विकास की दिल्ली अभी दूर है. यह तथ्य कि सेवा क्षेत्र ही भविष्य में आय बढ़ाने वाला क्षेत्र होगा, मज़बूत आधार पर खड़ा नहीं है. उदाहरण के लिए श्रमिक बल का केवल छोटा हिस्सा यानी 19 फ़ीसदी ही उच्च उत्पादकता वाले संगठित सेवा क्षेत्र में काम कर रहा है. जबकि एक बड़ा हिस्सा कम उत्पादक और असंगठित क्षेत्र में काम कर रहा है.

तालिका -1 भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की हिस्सेदारी का ढांचा

क्षेत्र	जीडीपी में हिस्सेदारी			श्रम में हिस्सेदारी		तुलनात्मक उत्पादकता	
	1950-51	1983-84	1999-00	1983-84	1999-00	1983-84	1999-00
प्राथमिक	59	39	25	60	57	1	1
द्वितीय स्तर	13	24	27	20	18	2.5	3.4
संगठित	-	-	64	25	17	-	8.8
असंगठित	-	-	36	75	83	-	1
तृतीय स्तर	28	37	48	20	25	2.8	4.2
संगठित	-	-	52	26	19	25	50
असंगठित	-	-	48	74	81	1.5	2

स्रोत - सीएसओ के राष्ट्रीय लेखा आंकड़ों पर आधारित

ग़रीबी और रोज़गार

हमारे देश की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा भयानक ग़रीबी में जीता है. यह बात सच है कि आनुपातिक तौर पर ग़रीबी का स्तर घट रहा है, लेकिन ग़रीबों की कुल संख्या अभी भी 30 करोड़ के आस-पास ही है. आज़ादी के तुरंत वाले बाद के दशक में ग़रीबों की संख्या 25 करोड़ थी जो 1970-79 के दशक में बढ़कर 35 करोड़ हो गई. अभी भी हालात संतोषप्रद नहीं है और हमारी एक अरब से अधिक की आबादी का तक़रीबन 30 फ़ीसदी हिस्सा बेहद मुफ़लिसी में दिन गुज़ार रहा है. इस मजलूम आबादी के पास जो संसाधन हैं वे बड़ी मुश्किल से ही रोज़ाना की ऊर्जा और कैलोरी की ज़रूरत को पूरा कर सके. राज्यों में भी बेहद सघन स्तर पर हमें अंतर देखने को मिलता है. ग़रीबी का अधिकतर घनत्व उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में देखने को मिलता है. जबकि दिल्ली, चंडीगढ़ और दमन व दीव जैसे केंद्र शासित प्रदेशों में कम ग़रीबी देखने को मिलती है (शहरी और ग्रामीण दोनों मिलाकर). अगर हम ग़रीबी की परिभाषा को और भी व्यापक बना दें, ताकि मानव विकास के सूचकांकों को भी सम्मिलित किया जा सके, तो जनसंख्या का और भी बड़ा तबका ग़रीबी के दायरे में आ जाएगा (देखें तालिका-2). कुल मिलाकर कहें तो यह प्रतिशत 65 से 70 तक हो सकती है. मानव विकास का राज्यवार विश्लेषण इंगित करता है कि केरल, पंजाब और हरियाणा जैसे राज्य सबसे ऊंचे का स्थान रखते हैं, उसी तरह बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्य विकास तालिका ख़ासा नीचा स्थान रखते है. (देखें तालिका-3) 2000 के अंतिम वर्षों में रोज़गार के मामले में यदि हम व्यक्ति वर्ष का हिसाब लगाएं तो वह दो करोड़ 70 लाख तक पहुंच गया था. इनमें से 74 फ़ीसदी ग्रामीण क्षेत्र में काम कर रहे थे और इनमें से 60 फ़ीसदी साक्षर थे. कुछ राज्यों और श्रम शक्ति के कुछ दायरों में बेरोज़गारी 25 फ़ीसदी की दर से बढ़ी. भारत के रोज़गार परिदृश्य में चिंता की एक बड़ी वजह अर्द्ध-बेरोज़गारी और ग्रामीण इलाक़ों में शिक्षित युवकों का बेरोज़गार होना है. यह बताता है कि ग्रामीण इलाक़ों में रोज़गार बढ़ाने के लिए सुचारू नीतियों की ज़रूरत है, इसके अलावा काम की मांग, शिक्षा और कौशल निर्माण में समन्वय बैठाने की ज़रूरत है. लैंगिक दृष्टिकोण से भी अगर हम देखें तो हालांकि महिलाएं हमारी श्रमशक्ति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लेकिन उनका अनुपात 299 प्रति हज़ार से गिरकर 281 प्रति हज़ार हो गया है (नेशनल सैंपल सर्वे 58वां राउंड के मुताबिक). शहरी इलाक़ों में यह आंशिक तौर पर बढ़कर 139 से 140 प्रति हज़ार हो गया है. चिंता का दूसरा विषय संगठित क्षेत्र में रोज़गार का छोटा शेयर (आठ-नौ फ़ीसदी) होना है, जहां असंगठित क्षेत्र के मुक़ाबले गुणवत्ता काफी बेहतर होती है. असंगठित क्षेत्र तो काम करने की ख़राब स्थितियों, सामाजिक सुरक्षा की कमी और मज़दूरी और रोज़गार की अस्थिरता से जूझ रहा है. एनएसएस का सर्वेक्षण हमें बताता है कि सभी क्षेत्रों में वास्तविक मज़दूरी में-औरतों और मर्दों दोनों की ही-बढ़ोतरी सुधारों के बाद देखने को मिलेगी. हालिया दिनों में भी वास्तविक मज़दूरी स्थायी रहे. ख़ैर औरतों के मामले में मज़दूरी में भेदभाव 90 के दशक में 30 फ़ीसदी से 40 फ़ीसदी हो गया. यह नुक़सान शहरी इलाक़ों में धीरे-धीरे ही सही लेकिन कम हो रहा है. जहां महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम नुक़सान उठाना पड़ रहा है.

तालिका -2

भारतीय अर्थव्यवस्था और ग़रीबी

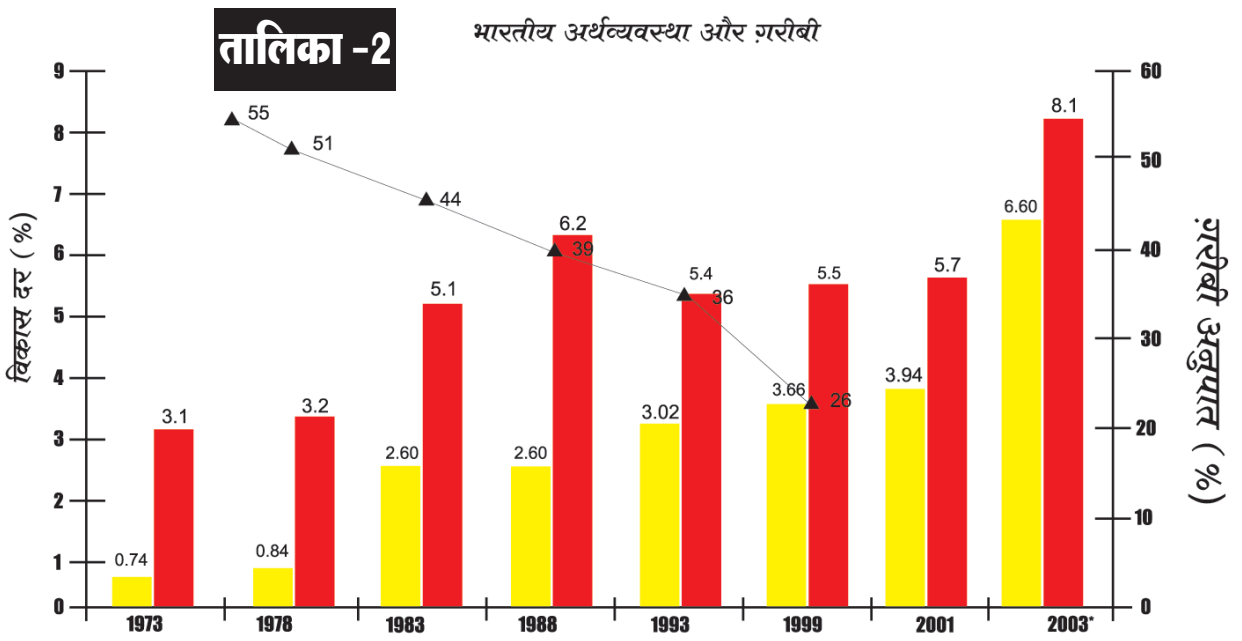

सोर्स: भारत सरकार

तालिका -3

मानव विकास सूचकांक अंतरराज्यीय असमानता

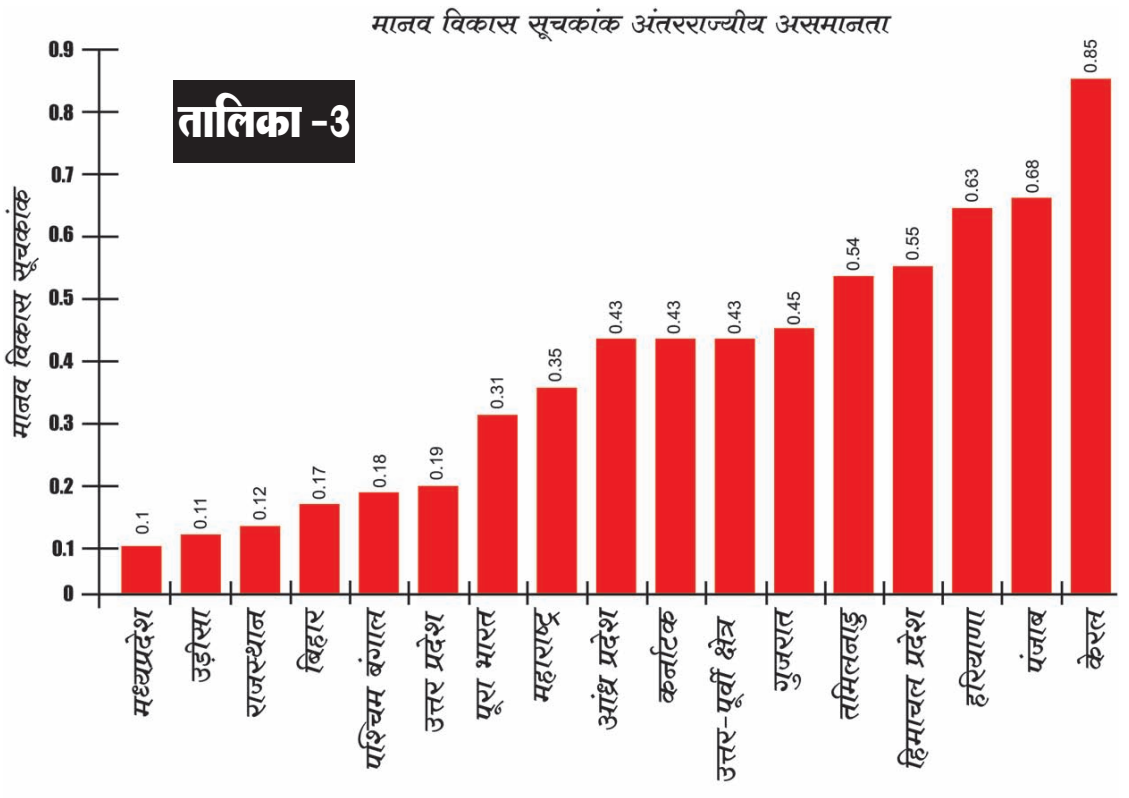

सोर्स: कुंडू, शरीफ एंड घोष, 2007

सीनियर रिसर्चर, अंतरराष्ट्रीय खाद्य अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली.

feedback@chauthiduniya.com

दीपावली पर दीप नहीं, दिल जलेंगे

प्रयाग अकबर

मानसून में आई देरी से देश के अधिकतर हिस्सों में कृषि उत्पादन पर ख़ासा असर हुआ है. फ़सल की बुआई का समय मौसम में आए परिवर्तनों की वजह से काफी प्रभावित हुआ है. किसान और कृषि क्षेत्र में काम कर रहे ग़ैर-सरकारी संगठनों के कार्यकर्ता कहते हैं कि कम-से-कम उन्हें भारतीय मौसम विभाग या कृषि मंत्रालय से ज़्यादा जानकारी दी जा सकती थी, जो आख़िरी वक़्त तक मानसून के बारे में सही सूचना देने में विफल रहे. भारत की 1400 मिलियन हेक्टयर कृषि योग्य ज़मीन का साठ फ़ीसदी बारिश के भरोसे रहता है और इस साल कम बारिश होने का इन पर सीधा असर हुआ है.

मानसून की टेढ़ी-मेढ़ी चाल ने सरकारी तैयारियों को अस्त-व्यस्त कर दिया. बिहार जैसे ग़रीब राज्यों को सूखे का दंश झेलना पड़ा है, जहां बहुत कम बारिश से धान और दूसरी ख़रीफ़ फ़सलों को काफी नुक़सान झेलना पड़ा है. बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने केंद्र से 470 करोड़ की मांग रखी है. अगर हालात और बिगड़े तो केंद्र से 9000 करोड़ तक का पैकेज मांगा जा सकता है.

20 जुलाई को कृषि मंत्री शरद पवार ने लोकसभा में माना कि भारत के कई ग़रीब राज्यों-बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और तमिलनाडु के कुछ हिस्से- में मानसून की स्थिति काफी ख़राब थी. एक अलग बयान में वित्त मंत्रालय ने बताया कि ख़रीफ़ फ़सलों ख़ासकर धान, सोयाबीन, मूंगफली की बुआई में काफी देरी हुई है. इसकी वजह से मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान जैसे बड़ी जनसंख्या वाले राज्य प्रभावित हुए हैं. 20 तारीख़ को ही वित्त मंत्रालय ने यह संकेत दिए कि वह मानसून न आने की स्थिति के लिए एक आपात योजना तैयार कर रही है. ग़ौरतलब है कि मानसून न आने से भारत के अधिकतर हिस्से सूखे जैसे स्थिति में हैं. हालांकि उम्मीद थी कि जुलाई के महीने में अच्छी मात्रा में बारिश होगी. लेकिन मानसून के धोखा दे देने से महंगाई की बारिश तय है. दैनिक जीवन में उपयोग वाले सामान अभी से महंगे होने शुरू भी हो गए हैं. ऐसे में इसकी पूरी आशंका है कि इस बार दीपावली में दीप नहीं, आम आदमी के दिल जलेंगे.

जब बारिश ने धोखा दिया तो इससे न केवल कृषि प्रभावित हुई, बल्कि इसका असर राष्ट्रीय विकास दर और ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की ख़रीदने की शक्ति पर भी पड़ा. यह शक्ति आर्थिक विकास का एक अहम पहलू है. प्रसिद्ध अर्थशास्त्री इला पटनायक मानती हैं कि कम बारिश के परोक्ष असर के तौर पर लोगों की आर्थिक स्थिति बिगड़ेगी, कुछ ज़रूरी चीज़ों के दाम बढ़ेंगे और इसका असर औद्योगिक उत्पादन और आख़िरकार सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी पर पड़ेगा.

भारत की जीडीपी पर कृषि क्षेत्र के असर का अध्ययन करने पर डॉ. पटनायक ने पाया कि जीडीपी का महज़ छह फ़ीसदी ही मानसून की विफलता से सीधे तौर पर प्रभावित होने वाला था. इसकी वजह 1990 के बाद से उत्पादन और सेवा क्षेत्र में हुई बढ़ोतरी और सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्र की ऊंची पैदावार है. ग़ौरतलब है कि हमारे देश की कुल कृषि योग्य ज़मीन का महज़ चालीस फ़ीसदी हिस्सा ही सिंचाई की सही सुविधाएं पाता है, जबकि यहीं से हमारी उपज का 70 फ़ीसदी हिस्सा आता है. हालांकि यहां यह बात समझने वाली है कि भले ही मानसून का असर जीडीपी के केवल छह फ़ीसदी हिस्से पर ही हो, लेकिन यह असर भी हमारे समाज के सबसे ग़रीब तबक़े यानी बिना सिंचाई की सुविधा वाले खेतों के किसानों के लिए बड़े और मुश्किल भरे होंगे. देश के क़रीबन 70 फ़ीसदी कृषक ऐसे ही खेतों में काम करते हैं और भारत के सबसे ग़रीब लोगों में हैं. सूखे की स्थिति का असर

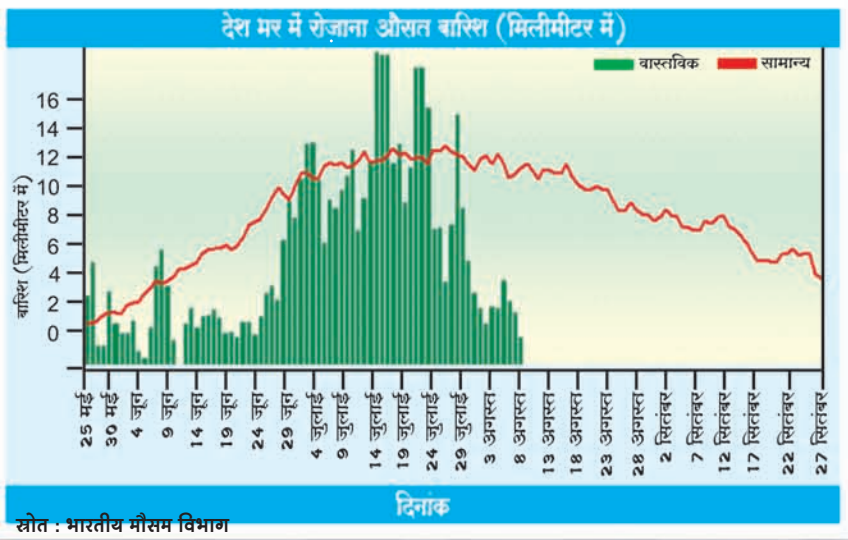

स्रोत : भारतीय मौसम विभाग

उन पर सबसे अधिक होगा. राजेश, जो भारतीयों किसानों को खेती के आधुनिक तरीक़े सिखलाने वाली अमेरिकी संस्था टेक्नोसर्व के लिए काम करते हैं और फ़िलहाल कोटा राजस्थान के सोयाबीन किसानों के साथ काम कर रहे हैं, मानते हैं कि बारिश में देरी से बड़ी समस्याएं आई हैं. वह कहते हैं कि दो-तीन ज़िलों में तो देरी की वजह से फ़सल की उम्मीद ही ख़त्म हो गई है. पहले बिल्कुल ही बारिश नहीं हुई, फिर चार जुलाई के आसपास थोड़ी बारिश होने पर किसानों ने सारी बुआई कर दी. लेकिन उसके बाद से बारिश न होने से बड़ी मात्रा में फ़सल नष्ट हो गई. हम इस बार काफी कम पैदावार की उम्मीद कर रहे हैं. हालिया भारत यात्रा में अमेरिकी विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन ने भी भारत में ग़रीब किसानों की स्थिति पर चर्चा की थी और सुझाव भी दिया था कि ख़राब मानसून की स्थिति में किसानों को क़र्ज़ देने के लिए सही तंत्र बनाया जाए. उनकी चिंता लगातार बढ़ती किसान आत्महत्या की घटनाओं को लेकर थी. भारत में प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के बाद भी किसान आत्महत्या की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं, ख़ासकर कृषि मंत्री के अपने राज्य महाराष्ट्र में.

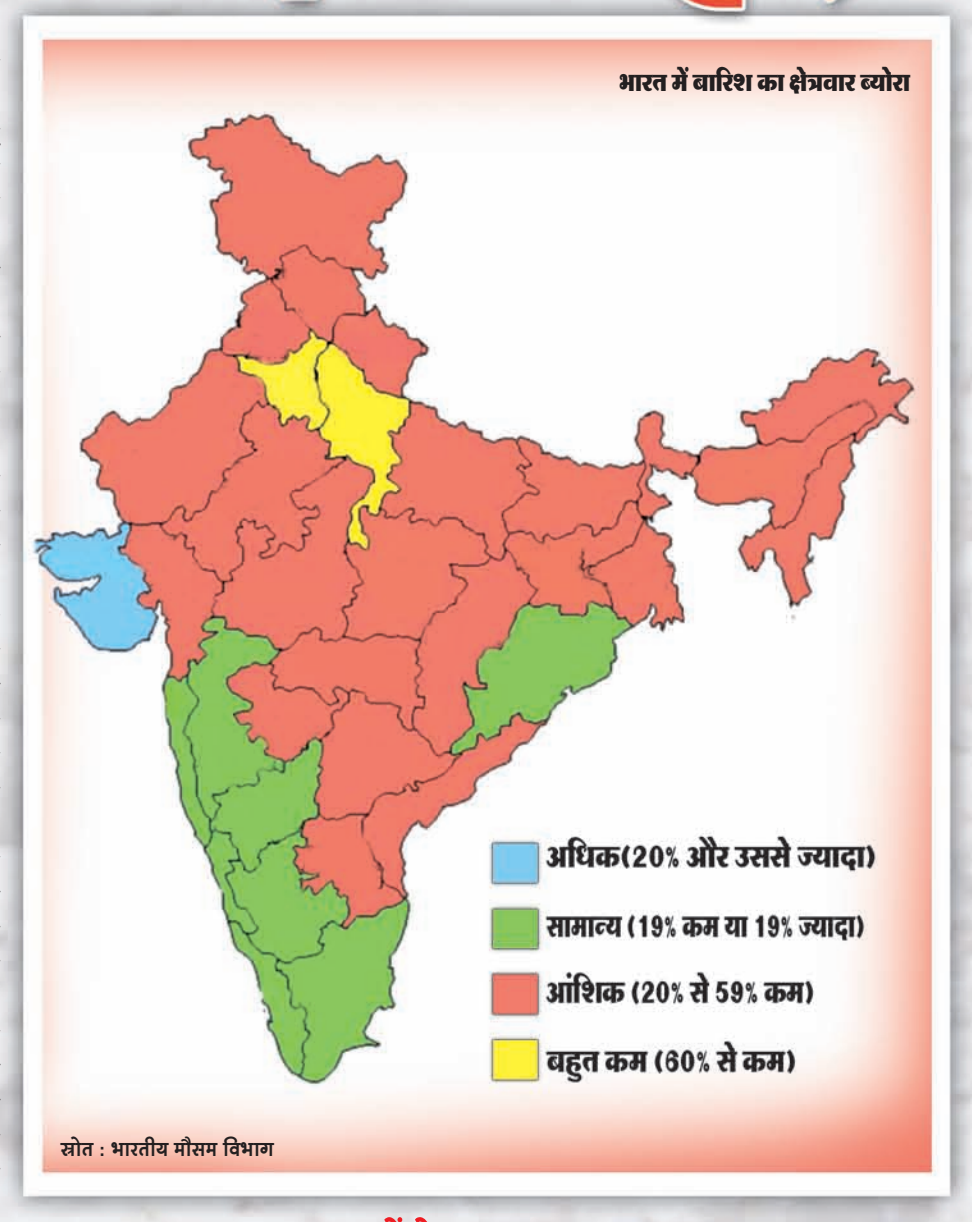

स्रोत : भारतीय मौसम विभाग

क्यों फेल रहा मानसून

जहां भारतीय मौसम विभाग अभी तक कम वर्षा की इस स्थिति की कोई वजह बता पाने में असफल रहा है, वहीं नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओसियनोग्राफी के डॉ. एस प्रसन्न कुमार की अगुआई में हुए एक शोध में इसकी कम-से-कम एक वजह तो साफ नज़र आती है. बारिश के आंकड़ों और वर्षाक्षेत्रों के अध्ययन के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि गर्मी में मानसून की वजह से होने वाली बारिश-जो हमारी मौसमी फ़सलों के लिए बहुत अहम है- में धीरे-धीरे कमी आ रही है. डॉ. कुमार के मुताबिक ग्लोबल वार्मिंग और दूसरे कारणों से समुद्र में वैसी स्थितियां पैदा नहीं हो रहीं जिनसे बादलों को लेकर बहने वाली हवा समुद्र से भारतीय धरती की ओर आएं.

समुद्र और धरती के तापमान में आए इस बदलाव की वजह से भारत के अन्न-उत्पादन में आत्मनिर्भर होने की क्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ा है. अगर आज़ादी के बाद के पांच दशकों को आधार मानें तो पिछले दस सालों में गेहूं उत्पादन में वृद्धि की दर में 16 गुना कमी आई है. डॉ. एस प्रसन्न कुमार बताते हैं कि उनके शोध के मुताबिक अगर आप औसत उत्पादन (किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) के आंकड़ों पर नज़र डालें तो एक बहुत चिंताजनक स्थिति दिखाई देती है. गेहूं उत्पादन की वृद्धि दर में बहुत कमी आई है. जहां 1965-75 के दशक में औसत उत्पादन उससे पहले के दशक के मुक़ाबले में 425 किलो बढ़ा, फिर 1975-85 में यह बढ़ोतरी 531 किलो और 1985-95 में 689 किलो हो गई, वहीं पिछले दशक में उत्पादन में यह बढ़ोतरी महज़ 42.56 किलो रही. इसका मतलब है कि पिछले दशक में गेहूं उत्पादन पर ग्लोबल वार्मिंग का असर हुआ है, जिसका प्रभाव हर साल हमारे अन्न भंडार भी पड़ा है. इसका मतलब यह है कि खाद्य उत्पादन में वृद्धि की दर इतनी कम होती जा रही है कि जल्द ही हमारा खाद्य उत्पादन साल-दर-साल घटने लगेगा. यह बेहद ख़तरनाक स्थिति होगी, क्योंकि हमारी जनसंख्या तो हर साल तेज़ी से बढ़ रही होगी. 13 जुलाई को भारत के मौसम विभाग ने केंद्रीय कृषि मंत्री के सामने एक प्रस्तुतीकरण रखा. इसमें कहा गया था कि विभाग को 13 से 20 जुलाई के बीच भारी बारिश की उम्मीद है और यह सप्ताह भारत में फ़सलों के लिहाज़ से बेहद अहम होगा. अगर इस सप्ताह मौसम विभाग की उम्मीद के हिसाब से बारिश हो जाती तो भारत को खाद्य स्थिति के बारे में सोचने की कोई ज़रूरत नहीं थी. इस सूचना के बल पर उस दिन ही शरद पवार ने मीडिया से कहा था- मौसम विभाग की जानकारियों के हिसाब से मैं कह सकता हूं कि अगला सप्ताह हमारे लिए अच्छा होगा. अगर यह अनुमान सही हुए तो मैं निश्चित तौर पर कह सकता हूं कि हम मुसीबत से बाहर हैं. हालांकि मैं अभी यह देखने का इंतज़ार कर रहा हूं कि असल में क्या होता है. फ़िलहाल स्थिति 10 दिन पहले के मुक़ाबले बेहतर है. हम अपनी पहली योजना पर क़ायम हैं और अभी कोई आपात योजनाएं लागू नहीं हैं. हालांकि मंत्री जी की दी हुई 20 जुलाई की समयसीमा ख़त्म होने पर भी स्थिति सुधरी नहीं है.

उत्तरी भारत के अधिकतर हिस्सों में सिर्फ़ छिट-पुट बारिश ही हुई है. उधर कई बार संपर्क करने पर भी मौसम विभाग की ओर से मीडिया से बात करने से इंकार ही आया है. कृषि मंत्री को दी गई रिपोर्ट के बारे में कोई सफाई नहीं दी गई है. समझना मुश्किल है कि ऐसे मौसम में भी जनता को जानकारी देने के कर्तव्य को वे क्यों भूल रहे हैं?

क्या कर सकती थी सरकार?

यूपीए कैबिनेट के एक वरिष्ठ सदस्य-जो अपना नाम नहीं बताना चाहते-कहते हैं कि मानसून के फेल होने को लेकर चिंता पिछली सरकार के समय के ही शुरू हो गई थी. यहां तक कि आम चुनाव से पहले इसकी चर्चा आधिकारिक गलियारों में भी होने लगी थी. उन्होंने स्वीकार किया-हमें चुनाव से पहले से ही पता था कि मानसून में देरी मुश्किलें बढ़ाने वाली हैं. भले ही इसका असर बहुत बड़ा न हो लेकिन थोड़ी परेशानी का अंदाज़ा तो पहले से ही हो गया था. मैं जानता था कि हमारा चावल और गेहूं का भंडार अभी काफी है. हालांकि खाद्य तेलों के मामले में समस्या हो सकती है. अच्छी बात यह रही कि तेलों से जुड़ी समस्या के बावजूद संबंधित मंत्रालय ने इसके लिए एक आपात योजना बनाकर पीएमओ और कैबिनेट को इसके बारे में बता दिया था. ऐसे में कोई भी समस्या आने से पहले ही टाली जा सकती थी. भले ही कैबिनेट को इस समस्या का अंदाजा था, इस समस्या के पहले स्तर से निपटने के लिए कुछ ख़ास नहीं किया गया. कोई आपात योजनाएं नहीं बनाई गईं. कम बारिश की स्थिति की समस्या से निपटने के लिए कई उपाय किए जा सकते थे, ताकि हमारी ग्रामीण जनसंख्या भूखी या बेघर न हो. विपक्षी नेता यशवंत सिन्हा ऐसी दो परिस्थितियों को याद करते हैं, जब उन्हें कम बारिश की समस्या से निपटना पड़ा था. पहला मौक़ा 1967 का था, जब वह किसी ज़िले के उपायुक्त थे और उन्हें बिहार में सुखाड़ की समस्या से दो-चार होना पड़ा था. दूसरी घटना 2002 में हुई जब वह केंद्रीय मंत्री थे. वह बताते हैं-मुझे याद है कि 1967 में सूखे से निपटने के लिए हमने सूखे वाले इलाक़ों के आसपास कच्चे कुएं बनवाए ताकि लोगों तक पानी पहुंच सके. हमारे पास सूखे के लिए तय नियम-क़ानून ब्रिटिश ज़माने से ही हैं. ऐसे समय में सरकार की यह ज़िम्मेदारी है कि वह विशेष रोज़गार अवसर, बिजली, चारा, पेयजल, क़र्ज़ माफी और नए क़र्ज़ मुहैया कराए. मेरे गृह राज्य बिहार में धान रोपनी नहीं हुई है. धान के बिचड़े (बीज वाले पौधे) बोए नहीं गए हैं. खाद्य उत्पादन बुरी तरह से प्रभावित होगा. भविष्य को देखते हुए अर्थशास्त्री फिर से 1960 के दशक में चलाई गई सिंचाई की बड़ी योजनाओं में निवेश की योजना की वकालत कर रहे हैं. सिंचाई की सुविधाओं के विस्तार से अपार लाभ हुआ था, लेकिन पिछले कुछ समय से सरकार का ज़ोर निजी सिंचाई योजनाओं के प्रोत्साहन पर रहा है. बिजली, पानी और उर्वरक जैसी चीज़ों पर सब्सिडी से फ़ायदा तो होता है लेकिन यह बात समझने वाली है कि यह लाभ छोटे किसानों के बदले बड़े किसानों को ज़्यादा मिलता है, क्योंकि वही इसके बड़े उपभोक्ता हैं. इस तरह फिर से छोटे किसान सरकारी ख़र्च पर मिलने वाली मदद से महरूम रह जाते हैं.

डॉ. पटनायक का सुझाव है कि सरकार को इस समस्या से निपटने के लिए और क़दम उठाने होंगे. वह बताती हैं-एक प्रस्ताव अमीर किसानों के लिए सब्सिडी देने के भारी ख़र्च को रोकने के लिए हर किसान को 200 किलोग्राम मुफ्त उर्वरक देने का है. यह छोटे किसानों के लिए काफी होगा, वहीं बड़े किसानों को बाज़ार से उर्वरक ख़रीदने होंगे. इससे हुई कमाई और बचत को सिंचाई की सुविधाओं में लगाया जा सकता है. यहां तक कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम (नरेगा) जैसी योजना को भी और बेहतर तरीक़े से इस्तेमाल में लाया जा सकता है, अगर उस पैसे को उन ग़रीबों को दिया जाए, जो बुनियादी ग्रामीण सुविधाओं जैसे सिंचाई जैसे कामों लगे हों.

feedback@chauthiduniya.com

पूरे भारत में फ़सल की स्थिति

फ़सल	क्षेत्र	चालू वर्ष	सामान्य का प्रतिशत	पिछले वर्ष	प्रतिशत
चावल	391.97	191.30	48.8	256.76	25.5
ज्वार	39.12	25.61	65.5	22.66	13.0
बाजरा	97.01	61.99	63.9	60.07	3.2
मक्का	68.04	62.92	92.5	59.23	6.2
कुल मोटे अनाज	229.62	159	69.5	153.25	4.1
कुल अनाज	621.59	350.86	56.4	410.01	14.4
तूर	35.80	27.22	76.0	21.92	24.2
उड़द	24.32	16.40	67.4	15.66	4.7
मूंग	27.34	19.24	70.4	18.08	6.5
अन्य	24.23	10.73	44.3	11.46	6.4
कुल दाल	111.69	73.58	65.9	67.12	9.6
कुल खाद्य पदार्थ	733.28	424.44	57.9	477.13	11.0
मूंगफली	53.63	33.11	61.7	41.35	19.9
सोयाबीन	78.09	90.74	116.2	87.75	3.4
सूर्यमुखी	8.05	3.87	48.1	2.02	91.6
तिल	17.54	11.28	64.3	11.17	1.0
नीजर	4.31	0.61	14.2	0.63	3.2
अरंडी	7.48	2.18	29.1	1.74	25.3
कुल आयल सीड	169.09	141.79	83.9	144.66	2.0
कपास	87.24	89.90	103	78.22	14.9
गन्ना	44.02	42.50	96.6	43.79	2.9
जूट	7.98	6.89	86.4	7.06	2.4
कुल फ़सल	1041.61	705.52	67.7	750.86	6.0

स्रोत : कृषि मंत्रालय

फोटो- पीटीआई

एम जे अकबर

देवड़ा जी! ज़रा देख-सुन कर चलिए

संसद की कार्यवाही का लाइव प्रसारण क्या लोकशाही के लिए उपयुक्त है? अनिश्चित से सवाल और उनके उतने ही उलझे जवाब, इसके साथ ही दोपहर में नींद से जूझते माननीय सांसदों के एक्सक्लूसिव फुटेज ज़ाहिर तौर पर टीआरपी को बढ़ाने वाले तो नहीं ही होते! समय-समय पर की गई नारेबाज़ी और बहिष्कार भी बस एक ही चीज़ बन कर रह गई है-रूटीन. जब लोकसभा में गुरुवार को उपभोक्ता वस्तुओं की आसमान छूती क़ीमतों पर बहस हो रही थी, तब हमारे दयालु कैमरामैन ने खाली सीटों और शून्य में ताकती नज़रों को अपनी ओर से अनदेखा करने की हरचंद कोशिश की.

इसकी तुलना ज़रा हमारे राजनीतिक वर्ग के अंदर मचे एक ख़ास तरह के घमासान से कीजिए. वह भी एक ज़रूरी उत्पाद-गैस-के ऊपर मचे बवाल को लेकर. इसके पीछे कुछ तार्किक कारण होने चाहिए.

यह उपमा दरअसल मौलिक नहीं है. तेल एवं गैस उत्पाद के मंत्री मुरली देवड़ा-जो अक्सर तनाव के वक़्त संचार को महत्व देते हैं-ने ही संसद में इस रूपक का इस्तेमाल किया था. उन्होंने बरसते हुए कहा था कि यह कहने से किसी का भला नहीं होगा कि फलां आदमी मेरी जेब में है, फलां आदमी उसकी जेब में हैं.

तूअर दाल के व्यवसायियों की जेबों में नक़द है. गैस के व्यापारियों के पास नक़द होने के साथ-साथ सांसद भी हैं.

यह उपमा दरअसल मौलिक नहीं है. तेल एवं गैस उत्पाद के मंत्री मुरली देवड़ा-जो अक्सर तनाव के वक़्त संचार को महत्व देते हैं-ने ही संसद में इस रूपक का इस्तेमाल किया था. उन्होंने बरसते हुए कहा था कि यह कहने से किसी का भला नहीं होगा कि फलां आदमी मेरी जेब में है, फलां आदमी उसकी जेब में हैं.

श्रीमान देवड़ा, इससे सचमुच किसी का भला नहीं होता. एक निर्दलीय उम्मीदवार परिमल नाथवानी, हालांकि वह किसी की जेब में रहने के बारे में बेबाक थे, मुकेश अंबानी की वकालत कर रहे थे. बृंदा कारत के अंदर का मार्क्स आख़िर जागा और वह खासी व्यथित दिखीं. उन्होंने सदन की निष्पक्षता संबंधी क़ानूनों की समीक्षा करने की मांग की और दलील दी कि यह तो सदन की मर्यादा के उल्लंघन का मामला बनता है. वह यहां एकाध मुद्दों पर चूक गईं. उनको दरअसल, केंद्रीय मंत्रिमंडल की मर्यादा पर ही बहस करनी चाहिए.

एक ऑस्ट्रेलियाई पत्रकार हामिश मॅक्डोनाल्ड ने एक अनधिकृत, लेकिन अर्द्ध-समेकित (सेमी-कॉलोबोरेटिव) जीवनी (इसके लिए रिलायंस के कार्यकारी अधिकारियों को धन्यवाद देना चाहिए) लिखी है. *द पॉलिस्टर प्रिंस: द राइज़ ऑफ धीरूभाई अंबानी* के नाम वाली यह जीवनी एक महान, लेकिन कई बार ग़लतियां करनेवाले जीनियस की दास्तान है. इसमें धीरूभाई के राजनीति से बिल्कुल शुरुआती संबंधों के पांच संदर्भ दिए गए हैं. इस गठबंधन की शुरुआत तब हुई थी, जब धीरूभाई के दर्शन को शंकालु हरेक तरह से ख़ारिज़ कर रहे थे. पेज संख्या 36 पर दिया गया पहला संदर्भ ही शायद पर्याप्त होगा- बांबे में अपने पैर वापस जमाने के बाद धीरूभाई के दिल्ली दौरों की संख्या बढ़ गई थी. वह बारहां, मुरली देवड़ा के साथ जाते थे, जो उनकी ही तरह सूत का कारोबार करते थे. देवड़ा उस वक़्त कांग्रेस पार्टी की बांबे शाखा में अपने पांव जमाने का प्रयास कर रहे थे. धीरूभाई और देवड़ा सुबह की फ्लाइट से दिल्ली जाते थे, अपने बैग अशोक होटल के एक सहानुभूतिशील क्लर्क के पास रखते थे और राजनेताओं व नौकरशाहों की चौखट पर जाते थे, ताकि ज़रूरी लाइसेंस पर होने वाले फ़ैसले तेज़ी से हो सकें.

भूतकाल को मुरली देवड़ा के वर्तमान के ख़िलाफ़ इस्तेमाल नहीं किया जा सकता. वह शायद सचमुच ही यह महसूस कर सकते होंगे कि उन्हें काफी पहले ही केंद्रीय मंत्री बन जाना चाहिए. वह ज़ाहिर तौर पर कुछ बेहद कुशल मंत्रियों में से एक हैं. सवाल उनके मंत्रालय को लेकर है, जो वह केंद्रीय मंत्रिमंडल में आने के बाद से ही संभालते रहे हैं. वह वैसे फ़ैसले लेते हैं जिनका प्रभाव धीरूभाई की विरासत के ख़ासे हिस्से पर पड़ता है. डॉक्टर मनमोहन सिंह तो सीज़र की पत्नी के सिद्धांत में यक़ीन रखते हैं : सार्वजनिक जीवन में आपको संदेहों के परे होना ही चाहिए. क्या सीज़र की पत्नी ने तेल मंत्रालय संभाला होता, अगर वह धीरूभाई का हमपेशा होती?

दरअसल काफी कुछ असहज दिखता है, जिसकी वजह से मुरली देवड़ा एक प्राकृतिक संसाधन (गैस)- जो मुकेश अंबानी की निजी मिल्कियत है- का दाम बढ़ाने पर अड़े हुए हैं. यह शायद पहली सरकार होगी जो एक ज़रूरी उत्पाद के दाम बढ़ाने पर आमादा है, न कि इसे नीचे लाने पर. इसके अलावा सरकार ने उसके दाम ऐसे स्तर पर रखे, जो निजी कंपनियों ने बताए. पिछले सप्ताह ज़रूरी उत्पादों के मूल्यों पर लोकसभा में होती बहस का जवाब देते हुए शरद पवार ने खाद्य उत्पादों की बढ़ती क़ीमतों के लिए ऊर्जा की ऊंची क़ीमत को ज़िम्मेदार ठहराया. इस बहस में कई कद्दावर नेताओं के साथ ही उपस्थिति अच्छी ख़ासी थी. शायद इस वजह से भी कि वह सत्र का आख़िरी दिन था. पर क्या कोई शरद पवार की बात सुन रहा था?

अंबानी बंधुओं-मुकेश और अनिल-के बीच के झगड़े में मूल मुद्दा कहीं दब गया सा लगता है. मुकेश अंबानी केवल अपने भाई अनिल को ही नहीं, बल्कि किसी को भी अनुबंधित मूल्य से दोगुने पर ही गैस बेचेंगे. एनटीपीसी एक राष्ट्रीयकृत और नवरत्न कंपनी है, पर उसे भी मुकेश को कम से कम 20,000 करोड़ रुपए और देने ही होंगे. अनिल अंबानी बड़े हो चुके हैं. वह अपनी देखभाल कर सकते हैं. अगर मुकेश अंबानी को 10 करोड़ मोबाइल की ज़रूरत पड़ जाए, तो ज़ाहिर तौर पर अनिल अपनी कंपनी के मोबाइल का दाम दोगुना करने का प्रयास करेंगे.

हालांकि, जनता की चिंता तब बेहद जायज़ है, जब सार्वजनिक क्षेत्र की कोई कंपनी अपने हितों की रक्षा न कर सके, क्योंकि इसके नामांकित अभिभावक-माननीय केंद्रीय मंत्री-विपक्ष का साथ दे रहे हों. एनटीपीसी ने अपने हितों की रक्षा के लिए मुंबई हाई कोर्ट में याचिका दायर कर रखी है, जबकि इसका पितृ मंत्रालय सुप्रीम कोर्ट में एक विरोधाभासी स्टैंड ले रहा है. गैस के दाम को लेकर मुरली देवड़ा के तर्क विचित्र से अद्‌भुत होते जा रहे हैं. वह कहते हैं कि गैस एक राष्ट्रीय संपदा है, इसी वजह से सरकार को उसका मूल्य निर्धारित करना चाहिए. लेकिन यह पैसा पाता कौन है? देश नहीं, बल्कि एक निजी कंपनी. वित्त मंत्री तब भी झेंप जाते हैं, जब उनको ऊर्जा संबंधी किसी उत्पाद की क़ीमत बढ़ानी होती है, ताकि सरकारी राजस्व को बढ़ाया जा सके. हालांकि यहां एक छटपटाहट इस विवाद में भी आसानी से देखी जा सकती है. राष्ट्रवाद ज़ाहिर तौर पर मुरली देवड़ा का आख़िरी आसरा बच गया है.

feedback@chauthiduniya.com

रवि किशोर

शिक्षा का अधिकार और जजों द्वारा संपत्ति की घोषणा

हाल ही में समाप्त हुए संसदीय सत्र में दो ऐसी घटनाएं हुईं, जिनकी चर्चा इस स्तंभ में होनी आवश्यक है. एक जो विधेयकों के इतिहास में मील का पत्थर माना जाएगा और दूसरा जो दुर्भाग्य से विवादित रहा. पहले तो अच्छी ख़बर. यह ख़बर संसद द्वारा बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार विधेयक-2009 को अपनाने की थी. इसमें छह से 14 साल के बच्चों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रावधान है और जिसे लोकसभा ने ध्वनिमत से पारित किया. राज्य सभा ने भी 20 जुलाई को इसे पारित कर दिया. इस पर हुई बहस का जवाब देते हुए मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल ने केंद्र के इस क़दम को एक राष्ट्रीय महत्व की घटना बताया जो भारत के भविष्य को बनाने में मदद करेगा. यह विधेयक हरेक बच्चे के शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने के साथ ही सरकार को इसके लिए बाध्यकारी भी बनाएगा. राष्ट्रपति की मुहर के साथ ही शिक्षा हरेक बच्चे का मौलिक अधिकार बन जाएगी.

इस विधेयक की कुछ ख़ास बातें इस प्रकार हैं :-

- भारत में छह से 14 वर्ष के आयु समूह में हरेक बच्चे को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा
- किसी भी बच्चे को निकाला नहीं जा सकता, वापस नहीं भेजा जा सकता और न ही प्राथमिक शिक्षा पूरी होने तक कोई बोर्ड परीक्षा देनी होगी
- कोई भी बच्चा जो प्राथमिक शिक्षा (वर्ग आठ तक) पूरी कर लेता है, उसे एक सर्टिफिकेट दिया जाएगा
- एक तयशुदा अनुपात हो छात्रों और शिक्षकों का
- यह पूरे भारत में लागू होगा, सिवाय जम्मू और कश्मीर के
- हरेक निजी स्कूल में कक्षा एक में आर्थिक रूप से कमज़ोर समुदायों के लिए अनिवार्य तौर पर 25 फ़ीसदी आरक्षण
- शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर ज़ोर
- हरेक स्कूली शिक्षक को पांच वर्षों के भीतर पेशेवर डिग्री लेनी होगी वरना उनकी नौकरी जाएगी.
- तीन साल के अंदर स्कूल के बुनियादी ढांचे को दुरुस्त करना होगा, वरना मान्यता रद्द
- वित्तीय ज़िम्मेदारी राज्य और केंद्र सरकार के बीच बांटी जाएगी

इस विधेयक के लागू होने के साथ ही भारत शिक्षा के सार्वजनीन बनाने की दिशा में एक क़दम बढ़ाएगा, जिसके बारे में पहली बार गांधी जी ने 1937 में ही बात की थी. हालांकि यह लक्ष्य पाने का रास्ता आसान नहीं है और राज्यों की मशीनरी को इसे लागू करने में पूरी ईमानदारी बरतनी होगी. कई सारी बाधाएं इसमें आएंगी, जिसमें सबसे बड़ी तो बुनियादी ढांचे की कमी होगी. सरकार को साफ तौर पर इस परियोजना के लिए दी गई रक़म को स्पष्ट करना चाहिए था. इसी तरह विकलांगों के आरक्षण के प्रावधान पर भी कोई ख़ास चर्चा नहीं की गई है. अल्पसंख्यकों ने अपने शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण का वैसे भी विरोध किया है, जिसे चलाने का अधिकार उन्हें भारतीय संविधान के तहत मिला हुआ है.

यह मामला कोई नया नहीं है, क्योंकि 1993 में ही माननीय सुप्रीम कोर्ट ने जे पी उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में हरेक बच्चे के लिए प्राथमिक शिक्षा का संवैधानिक अधिकार मुहैया कराने की ज़रूरत को रेखांकित किया था.

अगला और महत्वपूर्ण मसला डिक्लरेशन ऑफ असेट्स एंड लायबिलिटीज़ ऑफ जजेज़ का था, जिसे लाने के तुरंत बाद ही वापस भी लेना पड़ गया. विधि मंत्री वीरप्पा मोइली राज्य सभा में विधेयक को पेश करने में भी सफल नहीं हुए, क्योंकि इस विधेयक के वर्तमान स्वरूप का विरोध विपक्षी दलों के साथ ही सत्ताधारी गठबंधन के भी कुछ दल कर रहे थे. यह पूरा प्रकरण उस ग़ैर-पेशेवर रवैए को दिखाता है, जिस तरीक़े से विधि मंत्रालय ने इस संवेदनशील मसले पर काम किया. सरकार के पास इसके साफ संकेत थे कि भारतीय न्यायिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली में अधिक पारदर्शिता और जवाबदेही लाने की ज़रूरत है. इसमें एक न्यायाधीशों द्वारा अपनी संपत्ति की घोषणा भी शामिल है. क़ानून मंत्री द्वारा पेश इस विधेयक के ख़िलाफ़ सांसदों का मुख्य तर्क यह है कि जब सभी सरकारी कर्मचारियों को अपनी संपत्ति घोषित करनी होती है, तो जजों को ही इससे मुक्त क्यों रखा जाए? एक ओर यह प्रस्तावित विधेयक न्यायाधीशों के लिए सुप्रीम कोर्ट के किसी नामित अधिकारी के सामने अपनी संपत्ति घोषित करना अनिवार्य कर दिया है, लेकिन वहीं इसकी सार्वजनिक घोषणा या मीमांसा नहीं की जा सकती. राज्यसभा में भाजपा के नेता अरुण जेटली ने कहा कि इस विधेयक का प्रावधान छह-जो जजों की संपत्ति की सार्वजनिक घोषणा पर रोक लगाता है-दरअसल संविधान का उल्लंघन है. जेटली ने कहा कि कोई अगर चुनाव लड़ना चाहे, तो उसे पहले अपनी संपत्ति का ब्योरा देना होता है. यह प्रावधान तो सीधे तौर पर संविधान के अनुच्छेद 19 के ख़िलाफ़ है. हम एक ही अनुच्छेद की दो व्याख्याएं नहीं रख सकते. जेटली ने यह भी कहा कि जो भी व्यक्ति सार्वजनिक पदों पर हैं, उनके लिए किसी भी धारा या क़ानून की दोहरी व्याख्या नहीं हो सकती. राज्यसभा के एक निर्वाचित सदस्य-जो ख़ुद भी एक नामी वकील हैं- ने तो एक क़दम आगे बढ़कर विधेयक को भ्रष्टाचार में एक षडयंत्र ही करार दिया. ज़ाहिर है, ऐसे वक़्त में पारदर्शी होने की और आवश्यकता है, जब न्यायाधीशों के ख़िलाफ़ आरोप दिन-पर-दिन बढ़ते ही जा रहे हैं. हालिया मामला एक ऐसे केस से संबंधित है जिसमें पंजाब और हरियाणा की दो महिला न्यायाधीशों के नाम उभरे हैं. गाज़ियाबाद के पीएफ घोटाले में भी कथित तौर पर ऊंची अदालतों के कुछ जजों के नाम आए हैं. भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश ने सार्वजनिक तौर पर कोलकालता हाईकोर्ट के एक जज के पद पर बने रखने की मुखालफत की, लेकिन आज भी वह न्यायाधीश कार्यरत हैं. जजों के महाभियोग की प्रक्रिया काफी लंबी और पेचीदा है और किसी भी न्यायाधीश पर महाभियोग लगाना टेढ़ी खीर जैसा ही है.

मुख्य न्यायाधीश ने जजों की संपत्ति की घोषणा के ख़िलाफ़ अपना बयान इसलिए दिया कि उनकी नज़र में इससे न्यायाधीशों को खामखां परेशान किया जाएगा. अगर न्यायपालिका को सचमुच और कोई न्यायोचित तक़लीफ है, तो उसे समझने की ज़रूरत है, लेकिन न्यायिक व्यवस्था की पारदर्शिता और जवाबदेही के मूल्य पर नहीं. समानता का अधिकार भारतीय संविधान का मूल है और यह सब पर एक समान लागू होना चाहिए, बिना यह देखे कि कौन किस पद पर है?

इसमें कोई शक़ नहीं कि जज भी सरकारी कर्मचारी हैं और यह के वीरास्वामी बनाम भारतीय गणराज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट बता चुका है. उसमें कहा गया कि हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के जज भी प्रिवेंशन ऑफ करप्शन एक्ट के तहत आते हैं.

इन तमाम बातों के आलोक में न्यायिक सुधार पर एक समग्र विधेयक की आवश्यकता है, जिसमें जजों द्वारा संपत्ति की घोषणा, जजों की नियुक्ति और पदमुक्ति और न्यायपालिका की जवाबदेही वग़ैरह सब सुनिश्चित की जाए. इसके लिए सरकार को इस मसले पर एक बहस करवाने की ज़रूरत है और इसमें बार और बेंच के सदस्यों, वैधानिक विशेषज्ञों, आरटीआई कार्यकर्ताओं और राजनीतिक दलों को शामिल करने की ज़रूरत है. इसके बाद ही हम एक सर्वसम्मत नतीजे पर पहुंच सकेंगे और न्यायिक व्यवस्था को सुदृढ़ कर सकेंगे.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback@chauthiduniya.com

प्रिय संपादक जी,

आपके साप्ताहिक का नया अंक (16 अगस्त) मिला. वैसे तो हर बार कुछ न कुछ नया पढ़ने को मिलता ही है, मगर इस बार की कवर स्टोरी को पढ़ कर कुछ अलग तरह की अनुभूति हुई. आज जो कह रहे हैं कि हमारे यहां की राजनीति घटिया स्तर पर पहुंच गई है, उन सबके लिए जवाब हैं-ममता बनर्जी. हैरानी होती है कि इतनी भाग-दौड़ और व्यस्तताओं के बावजूद वह लेखन के लिए समय निकाल ही लेती हैं. यह जानकर सचमुच बहुत ख़ुशी हुई. साथ ही राजनीतिक क्षेत्र में उनकी सादगी जिस तरह बेमिसाल है, उसी तरह साहित्यिक संवेदनशीलता भी बेजोड़ है. मुझे विश्वास है कि ममता जी के इस पहलू से अनजान रहने वाला मैं अकेला निश्चय ही नहीं हूं. एक नई ममता बनर्जी से परिचय कराने के लिए चौथी दुनिया को बहुत-बहुत धन्यवाद. यह वाक़ई हैरान करता है कि वह आक्रामक राजनीति करती हैं, तो हर पीड़ित तक सीधी पहुंच की कोशिश भी करती रहती हैं. आक्रामकता भी ऐसा है, जो आम आदमी के साथ से पैदा हुए विश्वास से अधिक कुछ नहीं लगता. यक़ीनन वह राजनीति में एक नई दिशा की प्रवर्तक हैं.

ग्रामीण दुनिया में यह पढ़कर अच्छा लगा कि आजकल गांवों की महिलाएं भी रोल मॉडल बनने की सोच रही हैं और नई-नई तकनीक के बारे में जानने को इच्छुक हैं. साहित्य दुनिया में दिल्ली हिंदी अकादमी की राजनीति को पढ़कर यही लगा कि वे कभी नहीं सुधरेंगे. खेल और जगमग दुनिया की सभी सामग्री रोचक लगी.

आपका
पंकज
पिलखुवा, उत्तर प्रदेश

जब तोप मुक़ाबिल हो

मिलावट पर मिलनी ही चाहिए मौत की सज़ा

जनता बहुत जल्दी मांग करने वाली है कि खाने-पीने के सामान और दवाई में मिलावट करने वालों के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान होना चाहिए. गुजरात विधानसभा को इस बात के लिए बधाई देनी चाहिए कि उसने नक़ली या मिलावटी शराब बनाने वालों के लिए मौत की सज़ा का प्रस्ताव पारित किया है.

देश की महंगाई का बढ़ता असर और बीमारियों का कहर अब केवल ग़रीबों की परेशानी नहीं रहा. अब यह अमीरों के दरवाज़े खटखटा रहा है. विदेश जाने की ताक़त रखने वाले लोगों में जब कुछ लौटे तो वे अपने साथ स्वाइन फ़्लू ले आए, जिससे अब मौत का ख़तरा बढ़ता दिखाई दे रहा है. पहला ख़तरा तो मरीज़, उसके रिश्तेदारों और दोस्तों को है जो ज़ाहिर है पैसे वाले होंगे. इसीलिए देश में वे स्कूल दस दिनों के लिए बंद किए जा रहे हैं, जहां पैसे वालों के बच्चे पढ़ते हैं या जहां पढ़ाने के लिए पैसों का होना ज़रूरी है. सरकार भी उन्हीं के लिए चिंतित है. दिल्ली में और देश में ऐसे स्कूल, जहां आम आदमी के बच्चे पढ़ते हैं वहां इस ख़तरे को महसूस नहीं किया जा रहा है, क्योंकि वे कारपोरेशन के या म्युनिसिपैलिटी के स्कूल हैं, इसीलिए जब वहां न बैठने के लिए फर्नीचर है, न इमारत है और न पढ़ाने के लिए शिक्षक, तो मान लिया गया है कि वहां बीमारी जाएगी ही क्यों. यह अलग बात है कि वे स्वाइन फ़्लू से नहीं बल्कि गंदा पानी पीने से, मलेरिया से, पीलिया से या मालन्यूट्रीशन से भले मर जाएं.

मुस्लिम समाज के मदरसे तो और भी उपेक्षित हैं. बहुत जगहों पर उनकी हालत कारपोरेशन स्कूल से भी ख़राब है. बच्चों को बुख़ार आता है, घर वाले उन्हें सस्ती दवाई देते हैं, पर उन्हें कैसा बुख़ार है पता ही नहीं चलता. सरकार को चाहिए कि कारपोरेशन-म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों और मदरसों में यह प्रचार कराए कि दो दिनों से ज़्यादा जिन बच्चों को बुख़ार आता है और सांस लेने में हल्की सी भी तक़लीफ़ होती है, उन्हें तुरंत स्वाइन फ़्लू की जांच करानी चाहिए. बल्कि ज़िले के डॉक्टरों को निर्देश देना चाहिए कि ज़िले के हर स्कूल के बच्चों पर निगरानी रखें और उनका इलाज प्राथमिकता से करें.

इसी तरह एड्स के नाम पर हज़ारों करोड़ आते हैं, ख़र्च हो जाते हैं, लेकिन साल में मौतें होती हैं 700 या 800. इसे भी अमीरों की बीमारी में बदल दिया गया है, जब कि एड्स से सबसे ज़्यादा मौत उनकी होती है, जो महिलाएं हैं, और सेक्स व्यापार में हैं. न उनकी जांच होती है, न इलाज और न उनकी मौत का हिसाब रखा जाता है. बचने का एक तरीक़ा समलैंगिक संबंधों को जायज़ बनाने वाले क़ानून का समर्थन है, दूसरे शब्दों में तीन सौ सतहत्तर के हटाए जाने की ख़ुशी है. मलेरिया से साल भर में हज़ारों लोग मौत के मुंह में चले जाते हैं जिसका कोई नोटिस अब सरकार नहीं लेती. कालाज़ार की वजह से भी हर साल हज़ारों लोग मरते हैं, लेकिन वे भी हमारी चिंता का विषय नहीं है. छत्तीसगढ़, झारखंड, जम्मू कश्मीर और उत्तर पूर्व में मच्छरों की वजह से कितनी मौतें होती हैं, इन पर भी हमारा ध्यान नहीं जाता. ग़रीब मुसलमानों की मौत, दलित और वंचित वर्ग के लोगों की लाखों में मौत हमारी चिंता का कारण नहीं बनता, क्योंकि समाज और सरकार संवेदनहीन हो गई है. अफ़सोस की बात है कि दलितों, कमज़ोर वर्गों और अल्पसंख्यकों, विशेष कर मुसलमानों के बीच काम करने वाले या इन वर्गों के नेता भी इन मौतों को मुद्दा नहीं बनाते.

मुस्लिम समाज के मदरसे तो और भी उपेक्षित हैं. बहुत जगहों पर उनकी हालत कारपोरेशन स्कूल से भी ख़राब है. बच्चों को बुख़ार आता है, घर वाले उन्हें सस्ती दवाई देते हैं, पर उन्हें कैसा बुख़ार है पता ही नहीं चलता. सरकार को चाहिए कि कारपोरेशन-म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों और मदरसों में यह प्रचार कराए कि दो दिनों से ज़्यादा जिन बच्चों को बुख़ार आता है और सांस लेने में हल्की सी भी तक़लीफ़ होती है, उन्हें तुरंत स्वाइन फ़्लू की जांच करानी चाहिए.

हमें यह इसलिए लिखना पड़ रहा है क्योंकि अगर ये वर्ग चेत गए कि उनकी मौत से ज़्यादा पैसे वालों की मौत की अहमियत है, तो आने वाले वर्षों में यह देश अराजकता की ओर एक क़दम और उठाएगा. मौत और बीमारी में फ़र्क़ नहीं करना चाहिए, बल्कि ज़्यादा ध्यान ग़रीब वर्गों के ऊपर देना चाहिए.

इसी तरह महंगाई का मामला है. ग़रीब के घर की थाली में अब खाने की चीज़ें बची ही नहीं हैं. मध्यम वर्ग की थाली से भी खाने का सामान कम होता जा रहा है. बच्चों की पौष्टिकता अब कहने भर के लिए है. किसान के पास से फ़सल, चाहे वह गेहूं हो, धान हो, दाल हो, मसाले हों या सब्ज़ी, सस्ते भाव ख़रीदी जाती है और बिचौलिए उसे इतना महंगा कर देते हैं कि अब ये चीज़ें सिर्फ़ अधिक पैसे वालों की क़िस्मत में ही रह गई लगती हैं. इसमें भी मिलावट, रंग, ज़हर मौत को और नज़दीक बुलाता है.

जनता बहुत जल्दी मांग करने वाली है कि खाने-पीने के सामान और दवाई में मिलावट करने वालों के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान होना चाहिए. गुजरात विधानसभा को इस बात के लिए बधाई देनी चाहिए कि उसने नक़ली या मिलावटी शराब बनाने वालों के लिए मौत की सज़ा का प्रस्ताव पारित किया है. उसे चाहिए कि वह हर तरह की मिलावट, विशेष तौर पर खाद्य सामग्री और दवाओं में मिलावट करने वालों को मौत की सज़ा का प्रस्ताव करे. हम संसद से देश भर में मिलावट करने वालों के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान करने और ऐसा क़ानून बनाने का अनुरोध करते हैं. बहुत से लोग ऐसा कहेंगे कि मौत की सज़ा अमानवीय है, पर जो जानबूझ कर देश के आम आदमी को कैंसर के मुंह में ढकेल रहे हैं, वे मिलावट करने वाले अपराधी दवा कंपनियों के लिए बीमार जुटाने का अपराध करते हैं और दूसरी ओर मिलावटी दवा बनाकर मौत को ही परोस देते हैं, ऐसे लोगों के लिए मौत की सज़ा मांगना ही देश प्रेम है, जो इसका विरोध करते हैं, वे देशद्रोही हैं.

कब चेतेगी सरकार और कब अपने को आम आदमी के पक्ष में खड़ा दिखाएगी, इसका इंतज़ार है. आम आदमी के पक्ष का एक राष्ट्रीय एजेंडा बने और सारे राजनीतिक दल उसका समर्थन करें. यह अति आवश्यक है. अगर ऐसा होता है तो उसका स्वागत होगा और अगर यह नहीं होता है तो आप उसे भी अराजक बनने का आमंत्रण देते हैं, जो आज लोकतंत्र में भरोसा करता है.

संपादक

editor.chauthiduniya.com

नक्सलियों से निर्णायक लड़ाई ज़रूरी

सौमित्र मोहन

पश्चिम बंगाल सरकार के कड़े रुख़ के चलते लालगढ़ से क़दम पीछे ख़ींचने के बाद, नक्सली फिर से अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराने के लिए कुछ करने की ताक में थे. हाल में छतीसगढ़ में हुई नक्सली हिंसा में 36 पुलिस वालों के साथ एक एसपी की भी मौत हो गई. इसी से आप अंदाज़ा लगा सकते हैं कि नक्सलियों का इरादा क्या है. रेड कोरिडोर में आने वाले इस राज्य में इस वर्ष नक्सली हिंसा में मरनेवालों की संख्या 148 तक पहुंच गई है. वास्तव में लगभग एक साथ हुए ये तीन हमले राज्य में हाल में हुई नक्सली कार्रवाइयों में सबसे ख़ौफ़नाक थे.

लगता है कि माओवादियों ने ये हमले पूरी योजना से किए थे. कहा जा रहा है कि इस हमले का तौर-तरीक़ा 70 के दशक में पश्चिम बंगाल में हुए हमलों की तरह ही था. सबसे बड़ा हमला राजनांदगांव में हुआ, जो राज्य की राजधानी रायपुर से महज़ 70 किलोमीटर दूर है. यह माओवादियों के काम करने के हालिया तौर-तरीक़ों के बारे में बताता है. अगर कुछ ख़ुफ़िया रिपोर्ट पर विश्वास करें तो नक्सली अधिक से अधिक कार्यकर्ताओं को बहाली कर शहरों पर धावा बोलने की योजना बना रहे हैं.

ऐसा कहा जाता है हमले में मारे गए एसपी, मध्य प्रदेश के भिलाई में नक्सलियों के शहरी नेटवर्क को ध्वस्त करने के कारण कुछ समय से उनके निशाने पर थे. जिस तरह से नक्सलियों ने हमले किए हैं, उससे तो यही लगता है कि हमारे ख़ुफ़िया तंत्र और आंतरिक सुरक्षा को और अधिक मज़बूत करने की ज़रूरत है. नक्सली राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा ख़तरा हैं, यह बात प्रधानमंत्री ख़ुद मान चुके हैं. गृह मंत्री पी चिदंबरम ने भी नक्सलियों की तुलना आतंकवादियों से की है. ग़ौरतलब है कि केंद्र ने इससे कुछ सप्ताह पहले ही सीपीआई (माओवादी) को प्रतिबंधित कर दिया था.

हालांकि बहुत से राजनीतिज्ञों और प्रेक्षकों का मानना है कि तथाकथित उदारवादी और क्रांतिकारी क्षेत्र कुछ नहीं सिर्फ़ मीडिया का बनाया हौवा हैं, लेकिन फिर भी हमें माओवादी चुनौती को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की ज़रूरत है.

फोटो-*पीटीआई*

हालांकि नक्सलियों पर प्रतिबंध लगाने पर कोई आम सहमति नहीं बनी है, लेकिन समय आ गया है कि नक्सली धमकियों को गंभीरता से लिया जाए. गृह मंत्री पी चिदंबरम का मानना है कि पहले नक्सली समस्या को हलके में लिया गया था, जिस वजह से वामपंथी-चरमपंथी अपनी शाखाओं को फैलाते रहे. उन्होंने वादा किया है कि माओवादी चरमपंथियों के ख़िलाफ़ लड़ाई पूरी शक्ति से लड़ी जाएगी. माओवादियों की आतंकवादियों से तुलना यह साफ कर देती है कि हमारे देश के लिए वे कितने ख़तरनाक हैं. वामपंथी रेडिकलों का छद्म वेष धारण करने वाले इन आंतरिक दुश्मनों से निपटने के लिए कोई दूसरा बेहतर रास्ता अख़्तियार करने की ज़रूरत है. इसके लिए न सिर्फ़ हमें बुनियादी सुधारों जैसे बेहतर उपकरण और हथियारों की ज़रूरत है, बल्कि नक्सलियों की ख़बर जुटाने के लिए अपने ख़ुफ़िया तंत्र को और अच्छे और वैज्ञानिक तरीक़े से तैयार करने की ज़रूरत है. नक्सली चुनौती का सामना करने के लिए हमारी पुलिस को और प्रशिक्षित व प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है. पुलिस बल को उग्रवाद के ख़िलाफ़ होने वाले अभियानों की विभिन्न बारीकियों को समझाने की ज़रूरत है. इसके अलावा ज़रूरत इस बात की भी है कि नक्सल प्रभावित इलाक़ों में प्रभावी और सार्थक विकास योजनाओं को पूरा किया जा सके, ताकि ज़मीनी स्तर पर पैदा हो रही निराशा और मुख्यधारा से कटाव-जिससे नक्सलवाद को बल मिलता है-ख़त्म किया जा सके. हाल में ऐसी सिफ़ारिशें विशेषज्ञों के एक पैनल ने भी की है.

हालांकि बहुत से राजनीतिज्ञों और प्रेक्षकों का मानना है कि तथाकथित उदारवादी और क्रांतिकारी क्षेत्र कुछ नहीं सिर्फ़ मीडिया का बनाया हौवा हैं, लेकिन फिर भी हमें माओवादी चुनौती को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की ज़रूरत है. दूसरे उपायों के साथ-साथ इससे निपटने के लिए योजना और सहयोग, विशेष पुलिस बलों को हथियार और प्रशिक्षण देने की ज़रूरत है. अगर हाल के आंकड़ों को देखें तो नक्सली हिंसा कम नज़र आती है. नक्सली हिंसा की घटनाएं आतंकवाद से पीड़ित जम्मू कश्मीर और उत्तर-पूर्व में हुई घटनाओं से ज़्यादा हैं. नक्सल प्रभावित राज्यों में 915 घटनाएं घटी हैं. जबकि इस वर्ष मई तक जम्मू कश्मीर और उत्तर-पूर्व में 810 घटना हुईं थीं, इनमें 624 घटनाएं उत्तर-पूर्वी राज्यों में और 186 घटनाएं जम्मू कश्मीर में घटीं.

सरकार ने इस तरह के नक्सली हमलों से निपटने के लिए ब्रिगेडियर डी एस डडवाल को अपने सैनिक सलाहकार के तौर पर नियुक्त किया है. विभिन्न राज्य सरकारों से विचार विमर्श कर योजनाएं बनाई जा चुकी हैं. नक्सल प्रभावित राज्य सरकारों के बीच आपसी सहयोग के साथ एकीकृत नियंत्रण ही आज समय की ज़रूरत है. नक्सलियों को घात लगाने और बारुदी सुरंगों के विस्फोट करने में महारत हासिल है, इससे ज़ाहिर है कि हमारे देश के लिए नक्सलवाद एक बड़ी चुनौती है. ब्रिगेडियर डडवाल, जो 11 इन्फेंट्री डिविजन के उप जीओसी के तौर पर काम कर चुके हैं, का काम विभिन्न राज्यों के पुलिस बलों में तालमेल बैठाना है, जिससे नक्सली धमकी को अच्छे तरीक़े से निपटाया जा सके. उनका काम न सिर्फ़ सुरक्षा एजेंसियों को प्रशिक्षण के लिए सलाह देना है, बल्कि संगठन और संसाधनों के मामले में सहयोग देना भी है. जिस तरह से हमारे पुलिसकर्मी बार-बार घात लगाकर हुए हमलों में मारे जाते हैं, उससे यह आवश्यक हो गया है कि लगातार अपनी रणनीति में सुधार की जाए. नक्सलियों के ख़िलाफ़ सरकार को जो भी जवाबी तैयारी करनी चाहिए, उसे पहले के मुक़ाबले काफी चुस्त और तेज़ होना होगा. एक सच यह भी है कि नक्सली काफी भ्रमित हैं. वह क्या करना चाहते हैं, वे ख़ुद भी यह नहीं जानते. वह जिस व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ते हैं, उनके पास उसके विकल्प का कोई विचार और विज़न नहीं है. भारतीय लोकतंत्र सभी विचारधाराओं को समान अवसर देता है, ताकि वे मतदान के ज़रिए जनता का विश्वास जीत सकें. हालांकि जब तक नक्सली इस बात को नहीं समझते उनके ख़िलाफ़ एक मज़बूत और असरदार जवाबी कार्रवाई ही एकमात्र विकल्प है.

(लेखक प. बंगाल में आईएएस अधिकारी हैं. आलेख में व्यक्त विचार उनके अपने हैं और इनका सरकार के विचारों से संबंध नहीं है.)

feedback@chauthiduniya.com

ख़ुफ़िया एजेंसियों के सीक्रेट

जब चिट्ठियों के आतंक से टकराई एफबीआई

गोली, बम और बारुद से खेलने वाले अपराधियों से निपटना एफबीआई को ख़ूब आता है. लेकिन आज एफबीआई की कहानी में बात उस घटना की, जब अमेरिका की इस नंबर-एक जांच एजेंसी का सामना हुआ एक ऐसे अपराधी से जो न तो बंदूक का इस्तेमाल करता था और न ही किसी बम का. यह अपराधी सबसे छुपकर अपना काम करता था. उसका हथियार था एक सफेद-सा पाउडर और यह अपना आतंक फैलाता था चिट्ठियों के ज़रिए. इस हफ्ते आपके लिए इस ख़तरनाक मुज़रिम से एफबीआई की आंख-मिचौली की कहानी.

पावस नीर

आतंकी और राजनीतिक अपराधों को सुलझाने में लगी अमेरिकी संघीय जांच एजेंसी (एफबीआई) के पास एक अलग तरह का मामला आया. अमेरिका के पांच सबसे बड़े मीडिया दफ़्तरों में लोग एक के बाद एक बीमार पड़ने लगे थे. न्यूयार्क और फ्लोरिडा में स्थित *एबीसी न्यूज़, सीबीएस न्यूज़, एनबीसी न्यूज़, न्यूयार्क पोस्ट और नेशनल इन्क्वायर* में कर्मचारियों के बीमार होने के इस सिलसिले ने गंभीर मोड़ ले लिया, जब *नेशनल इन्क्वायरर* की सहयोगी संस्था *सन* के एक कर्मचारी की मौत हो गई.

यह सितंबर 2001 का वक़्त था. यह अमेरिकी इतिहास का एक यादगार महीना था. अमेरिका अपने जिस्म पर हुए सबसे बड़े आतंकी हमले के आतंक और ख़ौफ़ में डूबा था. 11 सितंबर 2001 को हज़ारों लोग वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर हुए हमलों में मारे गए थे. अमेरिकी जनता को समझ में नहीं आ रहा था कि आख़िर यह आतंक की बिजली उन पर क्यों और कैसे गिरी. अमेरिका के नेता इस हमले की जवाबी कार्रवाई की तैयारियों में जुटी थी और एफबीआई इस हमले के हर पहलू की जांच पड़ताल में जुटी थी. इस पूरे कांड में मीडिया की भूमिका बहुत अहम रही थी.

चिट्ठियों की इस तरह की गई जांच

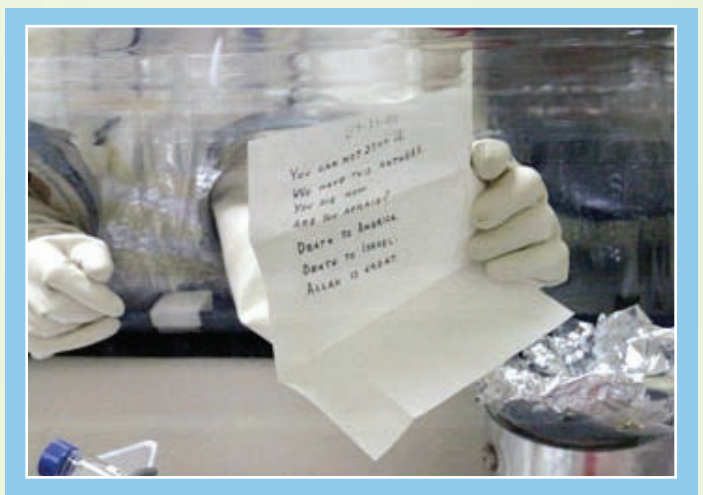

इन्हीं चिट्ठियों के साथ आया था एंथ्रैक्स का पाउडर

अब इस कांड के कुछ ही हफ्तों के अंदर मीडिया के लोग एक अजीब सी बीमारी से ग्रसित हो रहे थे. जांच करने पर पता चला कि ये लोग एंथ्रैक्स नाम की बीमारी से पीड़ित थे. अब मामले की जांच अमेरिकी संघीय जांच एजेंसी-एफबीआई-के ज़िम्मे थी. उन्होंने न्यूयार्क पोस्ट और एनबीसी न्यूज़ में दो ऐसे ख़त ढूंढ निकाले जिनमें एक सफेद पाउडर था. यह पाउडर एंथ्रैक्स के कीटाणुओं का था. इन ख़तों में अमेरिका को ख़त्म करने की धमकी थी और कहा गया था कि 11 सितंबर के हमलों से अमेरिकी के अंत की शुरुआत हो चुकी है. ये ख़त वर्ल्ड ट्रेंड सेंटर पर हमले के ठीक एक हफ्ते बाद भेजे गए थे. इन ख़तों के स्रोत का पता लगाने एफबीआई ट्रेंटन न्यूजर्सी के डाकखाने तक पहुंची, इससे आगे कोई सुराग नहीं था. एफबीआई अब एंथ्रैक्स के सैंपलों की जांच में जुट गई. न्यूयार्क स्टेट यूनिवर्सिटी की विशेषज्ञ बारबरा रोज़ेनबर्ग के मुताबिक इन ख़तों में मिला यह एक ग्राम पाउडर दरअसल बहुत ख़तरनाक था. उन्होंने बताया यह किसी हथियार की तरह था. अमेरिका पर एक रासायनिक हथियार से हमला हो रहा था.

इसी दौरान दो और एंथ्रैक्स वाली चिट्ठियां सामने आईं. ये चिट्ठियां दो डेमोक्रेट नेताओं टॉम डेस्चल और पैट्रिक लिही को भेजी गईं थीं. उस समय डेस्चल सीनेट में बहुमत के नेता और लिही सीनेट की न्यायिक कमिटी के अध्यक्ष थे. डेस्चल की चिट्ठी खुली और इसके बाद सरकारी मेल सेवा को ही बंद कर दिया गया. वहीं लिही को भेजी गई चिट्ठी ग़लती से कहीं ओर चली गई थी, जहां डाक विभाग का एक कर्मचारी बीमार हो गया. चिट्ठियां एक नक़ली पते से भेजी गईं थीं. लिही को मिली चिट्ठी से साफ हो चुका था कि यह आतंकी हमले थे.

अब एफबीआई के दूसरे विशेषज्ञ भी इस मामले से जुड़ चुके थे. निष्कर्ष निकाले जा रहे थे. वैसे तो यह माना जा रहा था कि इन हमलों के पीछे अल-क़ायदा और इराक़ का हाथ हो सकता है. अल-क़ायदा ने ही 11 सितंबर के हमलों की ज़िम्मेदारी ली थी, वहीं जो रसायन एंथ्रैक्स के पाउडर में पाया गया था, उसके इराक़ी हथियारों में शामिल होने की सूचनाएं थीं.

अब तक इन चिट्ठियों से 22 लोग एंथ्रैक्स का शिकार बन चुके थे. इनमें से पांच की मौत भी हो चुकी थी. एफबीआई और अमेरिकी डाक विभाग अब इन चिट्ठियों की जांच में जुट चुका था. इस जांच को नाम दिया गया-एमेरिथ्रैक्स. अब तक इस जांच से कई बड़े विशेषज्ञ जुड़ चुके थे. इनमें प्रसिद्ध सूक्ष्मजीव विशेषज्ञ ब्रूस एडवर्ड्स इविंस भी थे. एफबीआई का ध्यान फोर्ट डेट्रिक इलाक़े पर था, जहां से इस वायरस के आने की सबसे अधिक संभावना थी. इसी बीच एफबीआई को एक ऐसी रिपोर्ट के बारे में पता चला, जिसमें दो वैज्ञानिकों ने अमेरिकी धरती पर किसी रासायनिक हमले की सूरत में पैदा होने वाली स्थिति के बारे में पूरी जानकारी दी थी. इसमें यह भी बताया गया था कि अगर अमेरिका में चिट्ठियों के ज़रिए एंथ्रैक्स फैलाया जाए तो कैसे और कितनी मात्रा में पाउडर भेजना होगा. यह रिपोर्ट सीआईए के लिए तैयार की गई थी ताकि अमेरिका को किसी रासायनिक हमले के लिए तैयार रखा जा सके. लेकिन जांच अधिकारियों ने पाया कि एंथ्रैक्स मामले लगभग इस रिपोर्ट में दिए गए अनुमानों की तरह ही हैं. एफबीआई को पता चला कि यह रिपोर्ट स्टीवन हैट्फिल और विलियम पैट्रिक नाम के दो वैज्ञानिकों ने तैयार की थी. कुछ दिनों बाद एक प्रेस कांफ्रेंस में एफबीआई के एक अधिकारी ने माना कि हैट्फिल उनके शक़ के दायरे में था. स्टीवन हैट्फिल ने इस बात से नाराज़ होकर सरकार पर मानहानि का मुक़दमा ठोक दिया. इसे सरकार ने न्यायालय से बाहर ही हैट्फिल को मुआवज़ा देकर ख़त्म करा लिया. हैट्फिल को 58 लाख डॉलर मिले. उधर एफबीआई को वैज्ञानिक फ़िलिप जाक पर भी शक़ था. वे उसी इलाक़े में काम करते थे, जहां से एंथ्रैक्स का वायरस आया था. लेकिन एफबीआई एक बार हैट्फिल के मामले में अपना मुंह जला चुकी थी और फूंक-फूंक कर क़दम रख रही थी.

1 अगस्त 2008, को एसोसिएटेड प्रेस ने एक ख़बर जारी कि जिसके मुताबिक एफबीआई एंथ्रैक्स मामले में एक व्यक्ति पर मामला दर्ज़ करने और आरोप लगाने की तैयारी कर चुकी थी. यह व्यक्ति कोई और नहीं, सूक्ष्मजीव विशेषज्ञ ब्रूस एडवर्ड्स इविंस थे, जो फोर्ट डेट्रिक में 18 सालों से सरकार के लिए काम कर रहे थे और एंथ्रैक्स मामलों में एफबीआई की मदद भी कर चुके थे. कहा जा रहा था कि जल्द ही एफबीआई उनपर मुक़दमा दायर करेगी. हालांकि इस सूचना के सामने आते ही इसका विरोध भी शुरू हो गया. ब्रूस एडवर्ड्स इविंस के सहयोगियों ने इस बात की संभावना से ही इंकार कर दिया कि इविंस ऐसा कर सकते हैं. साथ ही यह सवाल भी उठाया गया कि आख़िर उनका उद्देश्य क्या हो सकता है. कई लोगों का मानना था कि इविंस भले ही एंथ्रैक्स के कीटाणुओं से जुड़े रहे हों लेकिन उनके पास उसे एक सूंघने लायक सफेद पाउडर में बदलने की क्षमता नहीं थी.

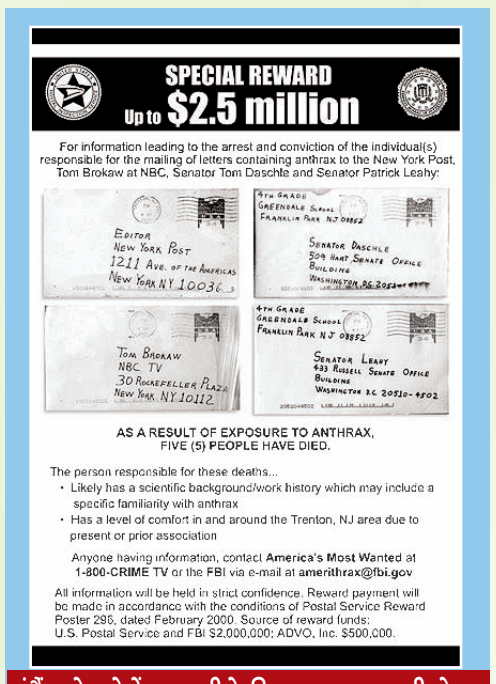

एंथ्रैक्स के बारे में जानकारी के लिए लगाए गए इनामी पोस्टर

हालांकि इस मामले में आगे कुछ होता इससे पहले ही ब्रूस एडवर्ड्स इविंस ने आत्महत्या कर ली.

इसी के साथ अमेरिकी जनता पर हुए सबसे ख़ौफ़नाक रासायनिक हमले का राज़ दफ़न हो गया. इविंस के मरने के बाद एफबीआई ने उनका एक टेप जारी किया जिसमें वह उस लैब के पास अकेले देखे गए थे, जहां से एंथ्रैक्स के वायरस के चोरी होने की संभावना थी. हालांकि इसे कोई सबूत नहीं माना जा सकता और उनके सहयोगी अभी भी मानने को तैयार नहीं हैं कि इविंस ऐसा काम कर सकते हैं.

यहां से एंथ्रैक्स की कहानी का आतंक धीरे-धीरे ख़त्म हो गया. लेकिन यह अपने साथ कई सवाल छोड़ गया. आख़िर किसने यह आतंक फैलाया? अगर वह इविंस थे तो आख़िर उन्होंने ऐसा क्यों किया? और इस बात की क्या गारंटी थी कि ऐसा दोबारा नहीं होता. एंथ्रैक्स के इस हमले के बाद से ही अमेरिका में रासायनिक हथियारों के ख़िलाफ़ तैयारी का बजट दो-गुना हो गया. कई डाकघरों, लेटर-बॉक्सेज और सरकारी दफ़्तरों की सफाई कराई गई. एक पूरा देश इस घटना को भूल आगे बढ़ आया और एंथ्रैक्स के इस ख़तरनाक मामले को एफबीआई की फाइलों में क़ैद कर पीछे छोड़ दिया गया.

pawas@chauthiduniya.com

ज़रा हट के

वैज्ञानिक खंगाल रहे हैं कचरा

अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य से निकले कुछ वैज्ञानिक कचरे के एक ढेर की तलाश में निकल पड़े हैं. कचरे का यह ढेर प्रशांत महासागर के बीचों-बीच है. ग्रेट पैसिफिक गार्बेज पैच नाम का कचरे का यह ढेर किसी राज्य के क्षेत्रफल के आकार का है. यह कैलिफोर्निया से क़रीबन हज़ार मील पश्चिम और हवाई द्वीप से हज़ार मील उत्तर में-नार्थ पैसिफिक गायर में-स्थित है. यह ऐसी जगह है, जहां मध्यांतर रेखा और उत्तरी अमेरिका व एशिया से आईं समुद्री धाराएं मिलती हैं और अपने साथ बहाकर लाए कचरे के अंबार को जमा कर देती हैं.

हालांकि वैज्ञानिकों को कचरे के इस ढेर के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं है. कुछ का कहना है कि यह अमेरिकी राज्य टेक्सास के बराबर आकार का है, तो किसी का कहना है कि इसका आकार इससे दोगुना है. इस कचरे का अध्ययन करना भी मुश्किल है, क्योंकि वे एक जगह नहीं बल्कि अलग-अलग टुकड़ों में तैर रहे हैं. वैज्ञानिक इस ढेर के अध्ययन से कई सवालों के जवाब पाने की उम्मीद रखते हैं. वैज्ञानिकों की इस बात में रुचि है कि ज़ूप्लैंक्टन नामक सूक्ष्म जीव-जो मछलियों का मुख्य आहार है-इस कचरे को खाते हैं या नहीं, और क्या वे इसे पचा जाते हैं या यह उनके लिए हानिकारक है. इस कचरे में मुख्यत: प्लास्टिक है और वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि अगर वे इससे कोई निष्कर्ष निकाल सके तो कचरे की एक बड़ी समस्या का हल भी निकल जाएगा. कचरे पर शोध कर रहे वैज्ञानिक यह भी देख रहे हैं

कि क्या इससे अलग-अलग स्पीशीज को एक क्षेत्र से दूसरे में जाने में सुविधा हो रही है? क्या यह कचरा दो स्पीशीज को एक-दूसरे से मिलाने में सहायक साबित होता है? सबसे अहम सवाल यह है कि इस तरह से समुद्र को प्रदूषित करने का हम पर क्या असर हो रहा है? इसके वैज्ञानिक अध्ययन के साथ ही एक टीम इस कचरे की रिसायकलिंग के विकल्पों के अध्ययन के लिए भी गई है. इस प्रोजेक्ट से जुड़े वैज्ञानिक डॉ. नॉक्स कहते हैं कि इस पूरे कचरे की वजह प्लास्टिक्स का सही तरीक़े से निष्पादन नहीं हो पाना है.

दौड़ लगा रहे हैं दूर देश के तारे

आपने आसमान में तारों को चलते ज़रूर देखा होगा. चलते तो सभी तारे हैं, लेकिन कुछ तारे ऐसे भी हैं जो कुछ ज़्यादा ही हड़बड़ी में हैं. हमारी आकाशगंगा से बहुत दूर एक ऐसी आकाशगंगा है जिसमें तारे बड़ी तेज़ी से चल रहे हैं. उनकी रफ़्तार 10 लाख किलोमीटर से भी तेज़ है. ये सितारे हमारे सूर्य से लगभग दोगुनी गति से चल रहे हैं. वैज्ञानिकों का मानना है कि ऐसा इसलिए है क्योंकि यह आकाशगंगा बहुत बड़ी है और सघन भी है. यह आकाशगंगा-जिसने अंतरिक्ष वैज्ञानिकों को सकते में डाल दिया है-यहां से 11 बिलियन प्रकाशवर्ष दूर है. ऐसा पहली बार है कि इतनी दूर की किसी आकाशगंगा में तारों की गति का अध्ययन किया जा रहा है.

हालांकि इन तारों की गति बहुत तेज़ लेकिन पहले भी तारों को इतनी तेज़ी से चलते देखा गया है. हालांकि उन तारों की गति का कारण ब्लैक होल की मौजूदगी या बाहर से आए तारे थे लेकिन इन नए तारों की गति का कारण वैज्ञानिकों की समझ में नहीं आ रहा. माना जा रहा है कि इसकी वजह आकाशगंगा की सघनता और भार है.

इस आकाशगंगा पर चिली स्थित साउथ जेमिनी टेलिस्कोप और हब्बल टेलिस्कोप से नज़र रखी जा रही है. अब तक जो चीज़ें सामने आई हैं, उससे उन वैज्ञानिकों की सोच पर मुहर लग गई है, जो यह मानते रहे हैं कि आकाशगंगाएं बनने के अपने शुरुआती दौर में काफी भारी और सघन होती हैं. आकाशगंगा के 11 बिलियन प्रकाशवर्ष दूर होने का मतलब है कि वैज्ञानिक आज से 11 बिलियन साल पहले की तस्वीरें देख रहे हैं, यानी कि यह ब्रह्मांड की उत्पत्ति- बिगबैंग की घटना- से महज़ तीन बिलियन साल की बाद की आकाशगंगा है. आकाशगंगाओं की उम्र के हिसाब यह आकाशगंगा (1255-0) युवा ही कहलाएगी.

फल के जूस से कैंसर को हराया

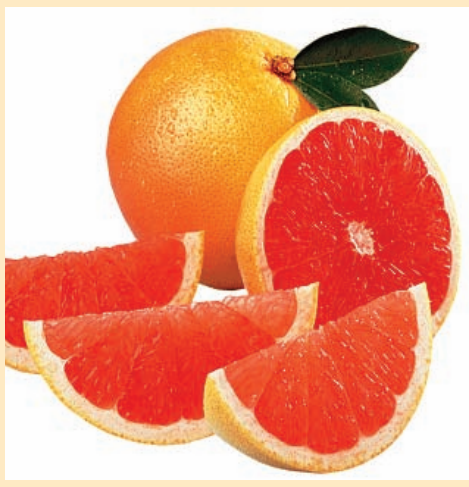

अलबीना डुग्गन को जब यह पता चला कि वह कैंसर की मरीज़ हैं और उनके पास जीने के लिए महज़ तीन साल हैं, तो उनके लिए यह सदमे वाली बात थी. पांच साल बाद वह अभी कुशल हैं और उनकी कैंसर ग्रसित गांठें कम हो गई हैं. इस बात के लिए वह शुक्रिया अदा करती हैं, मौसमी के जूस का. जब 41 वर्षीय अलबीना डुग्गन के लीवर और रीढ़ का कैंसर बार-बार के प्रयास से ठीक नहीं हुआ तो उन्होंने नई दवाओं के शोध में सहयोग का फ़ैसला किया.

शिकागो विश्वविद्यालय के कैंसर शोधकर्ताओं ने उन्हें रैपमाइसिन नामक दवा के साप्ताहिक और मौसमी के जूस के रोज़ाना डोज पर रखा. दरअसल मौसमी के जूस में मौजूद कुछ रसायन दवाओं की क्षमता बढ़ा देते हैं. हालांकि ऐसा ज़रूरी नहीं कि हर बार उससे फ़ायदा ही हो. अलबीना डुग्गन के मामले में शुरुआती दौर में कोई लाभ नहीं होता देख डॉक्टरों ने इस जूस की जांच की. उन्हें पता चला कि जिस तरह का डिब्बाबंद जूस वह बाज़ार से ख़रीद रही थीं, उसमें जूस के महत्वपूर्ण कारक ख़त्म हो जाते थे. डॉक्टरों ने इसके बाद उन्हें ताज़ा जूस की सलाह दी. इसका असर बहुत बेहतरीन रहा. इस तरह के प्रयोग 25 और मरीज़ों पर किए गए और उनमें से एक तिहाई पर इसका असर दिखाई दिया. इस प्रयोग की रिपोर्ट अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ कैंसर रिसर्च की वार्षिक बैठक में रखी गई. हालांकि इस प्रयोग की प्रमुख एज़रा कोहेन का कहना है कि डुग्गन पर इस प्रयोग का असर सबसे बेहतरीन रहा. अलबीना डुग्गन का कहना है कि इस प्रयोग के बाद साइड इफेक्ट्स और दवा पर लागत भी कम हो गई. कभी महज़ तीन साल का वक़्त पाने वाली अलबीना डुग्गन की ज़िंदगी अब किसी दायरे में सिमटी नहीं रही है. उनका मानना है कि शायद वह एक आम महिला की तरह जी सकेंगी और इसमें मौसमी का जूस उनका साथ तो निभाएगा ही.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

मौत के पहले मौत का खेल

■ क्या एक बार फिर मारा गया बैतुल्लाह महसूद?

राहुल मिश्र

पाकिस्तान के तालिबानी वर्चस्व वाले इलाक़ों में मौत कहर बनकर किसी भी वक़्त बरस सकती है. चार अगस्त की रात अमेरिका ने दो ड्रोन मिसाइल दक्षिणी वज़ीरिस्तान की दुर्गम पहाड़ियों पर बसी रिहायशी बस्तियों पर गिराया. यह इलाक़ा तहरीक-ए-तालिबान के मुखिया बैतुल्लाह मसूद का गढ़ है, जो पिछले कुछ महीनों से पाकिस्तानी ख़ुफ़िया एजेंसी (आईएसआई) और अमेरिकी मिसाइलों से बचने के लिए भाग रहा है. आईएसआई और अमेरिकी एजेंसी (सीआईए) एक बार फिर दावा कर रही है कि इस हमले में बैतुल्लाह महसूद को मार गिराया गया.

उत्तरी वज़ीरिस्तान में शहर लाधा से महज़ 15 किलोमीटर की दूरी पर मौजूद क़बाइली गांव जंघरा के दो मकानों पर निशानदेही कर अमेरिकी सेना ने दो ड्रोन मिसाइलें गिराईं. यह हमला रात के एक बजे तब हुआ, जब पूरा गांव गहरी नींद में सो रहा था. इनमें से एक मकान बैतुल्लाह मसूद के ससुर का था. सुरक्षा एजेंसियों के हवाले से मिल रही अपुष्ट ख़बरों के मुताबिक हमले के वक़्त बैतुल्लाह महसूद मकान की छत पर सो रहा था. कुछ स्थानीय रिपोर्ट यह दावा कर रही हैं कि महसूद डायबटीज़ का मरीज़ था और हमले के वक़्त उसे ड्रिप लगी हुई थी. क्षेत्रीय लोगों के हवाले से एक अख़बार ने यह भी दावा किया है कि बेटे की चाहत ने उसे मौत के मुंह में ढकेल दिया. दरअसल, बैतुल्लाह महसूद की पहली शादी से उसे चार बेटियां हैं, और वारिस के लिए पिछले साल ही उसने एक मौलवी की बेटी से निकाह किया था. लेकिन स्वात पर ड्रोन मिसाइलों के कहर के चलते वह अपनी बीवी से मुलाक़ात नहीं कर पा रहा था. इससे पहले दो बार ड्रोन के हमले में बाल-बाल बचने के बाद महसूद को यह यक़ीन हो गया था कि वह ज़्यादा दिनों तक नहीं भाग सकता. किसी भी वक़्त वह सुरक्षा एजेंसियों के हाथों मारा जाएगा. लिहाज़ा, अपने पीछे वारिस छोड़ जाने के लिए उसकी बेसब्री उसके मौत का सबब बन गया. पाकिस्तान का ख़ुफ़िया तंत्र कई दिनों से महसूद का इस गांव में आने का इंतज़ार कर रहा था. पांच अगस्त की रात जैसे ही उसे सूचना मिली कि महसूद गांव में अपने ससुराल पहुंच चुका है, आईएसआई ने सीआईए को यह सूचना दे दी. आईएसआई के सूत्रों के मुताबिक सीआईए ने इस सूचना को अमेरिका के नेवादा प्रांत में मौजूद ड्रोन मिसाइल के कंट्रोल रूम को भेज दिया. वहां तैनात विशेषज्ञों ने ड्रोन मिसाइल पर लगे कैमरे को एक्टिवेट किया और उड़ान भरते हुए उस मकान की छत की तस्वीरें उतारनी शुरू कर दी. तस्वीरों के ज़रिए आश्वस्त होने के बाद उस मकान पर और उसके बगल के मकान में भी चल रही गतिविधियों के कारण दोनों मकानों पर निशाना साथ लिया गया और दो ड्रोन मिसाइलें दाग दी गईं. चश्मदीदों और तालिबान के हवाले से आ रही ख़बरों के मुताबिक इस हमले में बैतुल्लाह महसूद, उसकी बीवी, ससुर और कुछ तालिबानी लड़ाके मारे गए. इसके विपरीत, शीर्ष के कुछ तालिबानी नेता महसूद के मारे जाने की ख़बर का खंडन भी कर रहे हैं. पाकिस्तान की सुरक्षा एजेंसी, सरकार और सेना दावा कर रही है कि महसूद मारा जा चुका है. अमेरिकी ख़ुफ़िया एजेंसी, सेना और व्हाइट हाउस भी महसूद के मारे जाने की बात पर यक़ीन कर रहे हैं. लेकिन मौत की पुष्टि तब तक नहीं की जा सकती, जबतक बतौर सबूत महसूद की लाश या फिर डीएनए सैंपल नहीं मिलता. इस सबूत के लिए पाकिस्तान सरकार को सेना और पुलिस की टीम को हमले की जगह पर भेजना ज़रूरी है, जहां से विस्फोट के बाद बचे सैंपल्स को एकत्रित किया जा सके. पुलिस और प्रशासन का इन क़बाइली इलाक़ों में कोई वजूद नहीं है. यही वजह है कि एक तरफ़ महसूद की मौत की पुष्टि नहीं हो पा रही है, तो दूसरी तरफ़ महसूद से जुड़ी ख़बरों पर ही लगातार सवाल उठ रहे हैं.

यह कोई पहला मौक़ा नहीं है जहां पाकिस्तान सरकार और आईएसआई किसी आतंकवादी के मारे जाने का दावा कर रही है और साथ ही सबूत देने में असमर्थ है. कुछ दिनों पहले ही दावा किया गया था कि दक्षिणी वज़ीरिस्तान में एक शोकसभा में शरीक हुए महसूद को पंद्रह तालिबानी आतंकियों के साथ ड्रोन हमले में मार गिराया गया. लेकिन, उस दावे के कुछ दिनों बाद महसूद लगातार मीडिया के संपर्क में रहा और प्रेस कांफ्रेंस करता रहा.

सोचने की बात यह है कि आख़िर ऐसी घटनाएं होती क्यों हैं और इसके मायने क्या हैं? इसकी कोई एक वजह नहीं है, बल्कि कई वजहें इसके लिए ज़िम्मेदार हैं. सबसे पहली और अहम वजह तो यह कि पाकिस्तान सरकार राजनीतिक दबाव में है. उसे अपने आकाओं (अमेरिकी) को यह साबित करना है कि वह आतंक के ख़िलाफ़ लड़ाई को लेकर गंभीर है और इसी वजह से उसे बार-बार आतंकियों के मरने की ख़बर फैलानी पड़ती है. इसके अलावा पाकिस्तान सरकार की मौजूदगी उन दुर्गम इलाकों में न के बराबर है. यहां न कोई पुलिस है, न कोई प्रशासन. इसलिए कौन मारा गया, कौन ज़िंदा है और कोई अगर मारा गया, तो कैसे इसका सबूत लाना नामुमकिन है. इन इलाकों में तूती बोलती है तो बस आतंकियों की. यहां तो पल-पल की ख़बर लाने वाली मीडिया के पांव भी थरथरा जाते हैं. इस वजह से सरकार को अक्सर स्थानीय खबरियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है. इन स्थानीय मुख़बिरों की ख़बर कितनी सही है और कितनी गलत, इसे जांचने का कोई ज़रिया पाक सरकार के पास नहीं है. कई बार तो इन ख़बरियों का इस्तेमाल आतंकी संगठन अपने फायदे के हिसाब से कर लेते हैं, इसीलिए बैतुल्लाह महसूद मारा गया है, या ज़िंदा है, इस पर अभी भी एक बड़ा सवालिया निशान लगा है.

rahul@chauthiduniya.com

मौत को झुठलाने वाले अल क़ायदा के आतंकवादी

अयमन अल जवाहिरी : अल क़ायदा में ओसामा बिन लादेन के बाद सबसे बड़े नाम जवाहिरी को मारने का दावा 14 मई 2008 को किया गया था. दावे के मुताबिक दक्षिणी वज़ीरिस्तान में एक हमले में अबु ख़बाब के साथ जवाहिरी भी मारा गया. लेकिन जवाहिरी ने एक हफ्ते बाद अपना वीडियो टेप जारी करके पाकिस्तानियों से सरकार के ख़िलाफ़ जंग लड़ने की बात कही.

मुस्तफा अबु याज़िद : आईएसआई ने अफ़ग़ानिस्तान में अल क़ायदा के सीनियर कमांडर याज़िद को अगस्त 2008 में बाजौर इलाक़े में एक मुठभेड़ में मारने का दावा किया. लेकिन अक्टूबर 2008 में याज़िद ने अपने कई वीडियो टेप जारी कर इस दावे की पोल खोल दी.

अदम गदाहन : 28 जनवरी 2008 को हवाई हमले में पाकिस्तान ने दावा किया कि अल क़ायदा के अमेरिकी प्रवक्ता गदाहन को उत्तरी वज़ीरिस्तान में एक हवाई हमले में मार गिराया गया. इसके बाद अल क़ायदा के जारी टेप का अंग्रेजी अनुवाद आना बंद हो गया था. लेकिन अक्टूबर 2008 के बाद एक बार फिर गदाहन ने अंग्रेजी में अल क़ायदा के बयान जारी करना शुरू कर दिया. ग़ौरतलब है कि देशद्रोह के मामले में अमेरिका अपने नागरिक गदाहन को तलाश रहा है.

राशिद राउफ : पाकिस्तान की ख़ुफ़िया सूचना पर अमेरिका ने दावा किया कि अल क़ायदा के यूरोपीय दस्ते का प्रमुख राशिद राउफ को वज़ीरिस्तान में नवंबर 2008 में मार गिराया गया. लेकिन कुछ ही दिनों बाद ख़बर मिली कि राउफ बेल्जियम, फ्रांस और इंग्लैंड में हमला कराने के लिए आतंकवादियों को ट्रेनिंग दे रहा है.

मारे जाने की घोषणा के बाद सामने आए तालिबान के आतंकवादी

बैतुल्लाह महसूद : सितंबर 2008 में पाकिस्तान ने दावा किया कि गुर्दे की बीमारी के चलते महसूद की मौत हो गई, लेकिन अगले ही महीने एक बार फिर महसूद दक्षिणी वज़ीरिस्तान में घूमते हुए देखा जाने लगा. 2009 की शुरुआत में एक बार फिर दावा किया गया कि महसूद ड्रोन हमले में मारा गया. कुछ ही दिनों बाद प्रेस कांफ्रेस करके महसूद ने इस दावे को भी झुठला दिया.

फ़क़ीर मोहम्मद : पाकिस्तानी सेना ने दावा किया कि अगस्त 2008 में बाजौर इलाके में एक मुठभेड़ के दौरान पाकिस्तानी तालिबान के डिप्टी कमांडर फ़क़ीर मोहम्मद को मार दिया गया. तालिबान ने फौरन इस दावे को नकारते हुए एक दिन बाद ही फ़क़ीर मीडिया के सामने आ गया.

मुल्ला फज़लुल्लाह : स्वात में 2009 में शुरू हुए घमासान के दौरान कई बार पाकिस्तानी सेना और आईएसआई ने दावा किया कि रेडियो मुल्ला उर्फ़ फज़लुल्लाह को मार दिया गया. लेकिन हर बार उन दावों को कुछ ही दिनों में अपने नए रेडियो प्रसारण से फज़लुल्लाह ने झुठला दिया.

इब्न अमीन : पाकिस्तानी सेना और आंतरिक मंत्रालय ने मई 2009 में अल क़ायदा कमांडर अमीन को मारने का दावा किया, लेकिन कुछ ही दिनों बाद अमीन स्वात पहुंच गया और वहां पर तालिबान की कमान संभाल ली.

मौलवी ओमर : सेना ने पाकिस्तानी तालिबान के प्रवक्ता मौलवी ओमर को बदानो में हवाई हमले के दौरान मार गिराने का दावा किया. कुछ ही दिनों बाद ओमर ने टेलीविजन पर आकर इस दावे की कलई खोल दी.

हंगामा है क्यों बरपा

नईमा परवेज़

शर्म अल शेख़ में जारी हुए भारत-पाकिस्तान के साझा बयान को लेकर संसद के अंदर और बाहर एक हंगामा बरपा है. एनडीए और विपक्ष की दूसरी पार्टियों ने प्रधानमंत्री द्वारा संसद में दी जाने वाली सफाई को अनदेखा करते हुई उनपर पाकिस्तानी कैंप में जा बैठने का आरोप लगाया है. टेलीविजन चैनल पर बड़े-बड़े कूटनीतिक विशेषज्ञों ने अपनी सारी बुद्धि साझा बयान को देश के ख़िलाफ़ एक साज़िश बताने पर ख़र्च कर दी है. हर एक टेलीविजन चैनल के पास अपने पाकिस्तान विशेषज्ञों के अलावा कूटनीति और सामरिक मामलों के जानकारों की एक फौज है, जिनकी रोज़ी रोटी पाकिस्तान पर प्रकट किए जाने वाले उनके विचारों से जुड़ी हुई है.

मामला गंभीर ज़रूर है, लेकिन शर्म अल-शेख़ में जारी हुए साझा बयान से ज़्यादा गंभीर सवाल कुछ दूसरे भी हैं, जिन पर कोई बात अब तक नहीं की गई है. साझा बयान के जिस हिस्से को लेकर आपत्ति प्रकट की जा रही है, वह है आतंकवादी कार्रवाइयों को बातचीत से अलग रखना, और बलूचिस्तान का ज़िक्र. अब तक किसी भी स्तर पर होने वाले तर्क-वितर्क का केंद्रबिंदु यही दो मुद्दे हैं. इन दोनों से अधिक महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या हमारा सरकारी तंत्र बहुत से मामलों पर राजनीतिज्ञों को अंधेरे में रखता है? यह तो सभी मानते हैं कि राजनीति में आने वाले लोगों का स्तर दिन पर दिन गिरता जा रहा है. संसद में होने वाली चर्चा का स्तर इसका एक उदाहरण है. इन परिस्थितियों में सरकारी तंत्र राजनीतिज्ञों पर अपनी पकड़ मज़बूत कर लेता है. प्रधानमंत्री ने बलूचिस्तान को साझा बयान में सम्मिलित करने की हामी भरी तो इसके दो कारण हो सकते हैं. या तो उनके सरकारी तंत्र ने इस विषय पर उन्हें अंधेरे में रखा और पाकिस्तानी प्रधानमंत्री युसूफ रज़ा गिलानी के साथ उनकी वार्ता में कुछ ऐसे तथ्य सामने आए जिन्हें वह नकार नहीं सके. दूसरा कारण यह हो सकता है कि उनके सलाहकारों ने, जिनमें उनके बेहद क़रीबी माने जाने वाले सुरक्षा सलाहकार के.आर.नारायण भी थे, इस विषय पर उन्हें गुमराह किया. दोनों ही सूरतों में कहीं न कहीं राजनीतिक नेता के रूप में उनकी छवि को ख़राब करने की ज़िम्मेदार सरकारी तंत्र की है. यह परिस्थिति किसी भी राजनीतिक पार्टी या राजनीतिज्ञों के लिए अच्छी नहीं है. एनडीए या विपक्ष की दूसरी पार्टियां जिस बात की अनदेखी कर रही हैं, वह है उनका कम होता हुआ राजनीतिक वर्चस्व, जिसका नुक़सान भी सभी राजनीतिक पार्टियों का होगा.

फोटो- पीटीआई

ऐसी परिस्थिति आई क्यों, इसकी भी एक पृष्ठभूमि है. इंदिरा गांधी ने सरकारी बाबुओं को पहली बार पॉलिसी मेकिंग में शामिल करना शुरू किया था. जनता पार्टी की सरकार इसी कारण ब्यूरोक्रेसी के लिए बेहद ख़राब सरकार थी कि उन्होंने बाबुओं को अपनी लक्ष्मण रेखा पार नहीं करने दी. एनडीए के राज में आंतरिक सुरक्षा पर राष्ट्रीय हित के नाम पर सरकारी बाबुओं की पॉलिसी मेकिंग में घुसपैठ कुछ इस तरह बढ़ी कि वह आज भी अपने को सरकार मानते हैं. इसका एक उदाहरण 1984 में दिखा, जब सरकार ने सियाचिन में सेना भेजने का फ़ैसला किया था तो सेना के किसी भी अधिकारी से यह नहीं पूछा गया था कि वहां सेना भेजी जाए या नहीं. अब सियाचिन से वापसी के मामले को लेकर सेना और रक्षा मंत्रालय के बाबू खुलेआम अपनी राय देते रहते हैं. पाकिस्तान का मामला भी कुछ ऐसा ही है.

पाकिस्तान तो बंटवारे के बाद से ही विदेश नीति और सुरक्षा को लेकर भारत के लिए एक उलझी गुत्थी रहा है. छह दशकों के इतिहास में पाकिस्तान के साथ हमारे रिश्तों ने बहुत से उतार-चढ़ाव देखे हैं. पाकिस्तान का अपना इतिहास वहां के नेताओं की महत्वाकांक्षाओं, सत्ता के लिए लोभ और ऊंचे वर्ग के लिए बनाई गई पॉलिसियों की एक लंबी कहानी है. इसके चलते धीरे-धीरे पाकिस्तान एक बनाना रिपब्लिक बनकर रह गया. लेकिन पाकिस्तान में पाई और पनपने वाली सभी बीमारियों के बावजूद, पाकिस्तान से डील करते समय दो तथ्यों की अनदेखी नहीं की जा सकती. एक तो यह है कि पाकिस्तान अविभाजित भारत का अंग रहा है, और दूसरे वह हमारा पड़ोसी है. हम मानें या न मानें, पाकिस्तान की विफलता उसकी भौगोलिक सरहद तक सीमित नहीं रहेगी, बल्कि उसके झटके पूरे क्षेत्र पर गहरा असर डालेंगे. और सबसे क़रीबी पड़ोसी होने के नाते हम पूरी तरह से भूकंपी क्षेत्र में हैं. अगर एक बार भी हम इस वास्तविकता को समझ लें तो हम कभी भी ऐसी नीतियों का समर्थन नहीं करेंगे जो पिछले छह दशकों में बहुत सी ग़लतफहमियों और भ्रांति की पैदावार हैं. बंटवारे से पनपी नफ़रत इन नीतियों का केंद्रबिंदु है, जो दुनिया और क्षेत्र की बदलती परिस्थितियों और सच्चाइयों के चलते अप्रासंगिक हो चुकी है. अगरचे कुछ लोग पाकिस्तान को बंटवारे की ऐनक से ही देखते हैं.

बिना इस विस्तार में गए कि क्या किया जा सकता था और क्या होना चाहिए था, पाकिस्तान की आज की परिस्थितियां भारत के लिए चिंता का विषय हैं. साल 2008 में पाकिस्तान में 248 आतंकवादी हमलों, सेना और आतंकवादियों के बीच हुई 95 झड़पों, राजनीतिक हिंसा की 88 वारदातों, 191 सांप्रदायिक और क़बाइली लड़ाइयों और 55 सरहदी हिंसा की कार्रवाइयों में 7997 लोग मारे गए. इस साल यानी 2009 में जून तक 2612 लोग ऐसी ही घटनाओं में मारे गए. इस पूरे क्षेत्र में केवल श्रीलंका में मरने वालों की गिनती पाकिस्तान की गिनती के क़रीब है जहां 1934 लोग जनवरी से जून के बीच मारे गए. यहां तक कि अफ़ग़ानिस्तान में इन छह महीनों में हिंसात्मक कार्रवाइयों में मरने वालों की संख्या 1076 थी. हिंसात्मक कार्रवाइयों में इतनी बड़ी संख्या में लोगों की मौत इस पूरे मामले का एक पहलू है जबकि दूसरी हक़ीक़त ज़्यादा संगीन है और वह यह कि अफ़ग़ानिस्तान के बाद पाकिस्तान तेज़ी से विश्व की बड़ी ताक़तों के खेल का मैदान बनता जा रहा है. परेशानी यह है कि हम इतिहास के बोझ तले अभी भी उन्हीं घिसी-पिटी पॉलिसियों को लागू करना चाहते हैं जबकि पूरा उपमहाद्वीप इसकी लपेट में आता चला जा रहा है. विडंबना यह है कि बंटवारे के 60 साल बाद भी हमारे पास कोई ऐसा सिस्टम नहीं है जिसके ज़रिए पाकिस्तान पर सामरिक, वास्तविक और साझा इतिहास पर निर्भर करता कोई फर्स्ट हैंड विश्लेषण किया जा सके. पाकिस्तान के मामले में हम ज़्यादातर अमेरिकी और पश्चिमी देशों के थिंक -टैंकों पर निर्भर करते हैं. यह *कट-पेस्ट पॉलिसी* न पहले सफल हुई है और न अब होगी. सबसे क़रीबी पड़ोसी होने के नाते हमें पाकिस्तान की परिस्थितियों और उनके समाधान पर संजीदगी से विचार करना होगा. पाकिस्तान का मामला और गंभीर हुआ, जब पाकिस्तान और उससे संबंधित आतंकवाद दुनिया भर में सबसे ज़्यादा बिकने वाली चीज़ बन गई और हमने खुली अर्थव्यवस्था के चलते इस अंतरराष्ट्रीय ट्रैंड को अपना लिया. मीडिया से लेकर हमारे पूर्व कूटनीतिज्ञ-जिनकी अपनी कार्यकुशलता को लेकर बहुत से प्रश्नचिह्न लगे हुए हैं, हमारे बहुत से जाने-माने लेकिन नाम मात्र के कूटनीतिज्ञ-जिनकी सारी की सारी भूमिका विदेशी थिंकटैंकों के एजेंडे को भारत में बढ़ाने तक सीमित है, हमारा भ्रष्टाचारयुक्त सुरक्षातंत्र-जो अपनी सारी की सारी ख़ामियों और कमज़ोरियों को छुपाने के लिए पाकिस्तान को हर कार्रवाई के लिए ज़िम्मेदार मानता है, ये सभी वर्ग अपने-अपने तौर पर पाकिस्तान और आतंकवाद को बेचने के लिए अपनी मार्केटिंग क्षमता का इस्तेमाल कर रहे हैं. उनके लिए राष्ट्र हित कोई मायने नहीं रखता और उनकी राष्ट्रीयता केवल पाकिस्तान को गाली देने तक सीमित है. पाकिस्तान में जो इंडस्ट्री जिहाद के नाम पर चल रही है, हमारे यहां वही इंडस्ट्री काउंटर टूरिज़्म के नाम से जड़-पकड़ चुकी है और जब तक इसे क़ाबू में नहीं किया जाता, शर्म अल शेख़ की तरह की घटनाएं होती रहेंगी.

feedback@chauthiduniya.com

पेंटिंग संग बनाती हैं राष्ट्र निर्माण की योजना

पिछले तीन वर्षों से श्रम मंत्रालय एक मई को दो उत्सव मना रहा है. उत्सव मनाने के दो कारण भी हैं. पहला अंतरराष्ट्रीय श्रम दिवस, तो दूसरा बहुआयामी प्रतिभा की धनी श्रम मंत्रालय की सचिव सुधा पिल्लई का जन्मदिन. वह केरल काडर के 1972 बैच की आईएएस अधिकारी हैं. अगर यह महज़ एक संयोग था, तो एक और संयोग उनका इंतज़ार कर रहा है. महज़ एक महीना पहले सुधा पिल्लई और उनके पति जी. के. पिल्लई (अब गृह सचिव हैं), अगले कैबिनेट सचिव बनने के प्रबल दावेदार थे, जब के. एम. चंद्रशेखर का कार्यकाल 13 जून को पूरा हो गया था. लेकिन ऐसा पहली बार हुआ कि चंद्रशेखर के कार्यकाल का विस्तार किया गया और इस तरह से अटकलों पर विराम लग गया. सुधा पिल्लई का बचपन और किशोरावस्था शिमला और चंडीगढ़ में गुज़रा. उनके पिता प्रशासनिक अधिकारी थे और मां शिक्षिका थीं. उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में प्रतिष्ठा की उपाधि चंडीगढ़ के गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वुमन (अब गवर्नमेंट कॉलेज फॉर गर्ल्स) से ली. अंग्रेजी के साथ दो सहायक विषय मनोविज्ञान और समाजशास्त्र थे. 18 वर्ष की उम्र में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया. उनको एमए (मनोविज्ञान) में भी स्वर्ण पदक से नवाजा गया. सुधा को अपने कॉलेज में पढ़ाने का मौक़ा भी मिला, लेकिन उनकी इच्छा प्रशासनिक सेवा में जाने की थी. 21 वर्ष में उन्होंने सिविल सर्विस की परीक्षा में दूसरा स्थान प्राप्त किया. पसंदीदा सेवा के तौर पर सुधा ने भारतीय विदेश सेवा को चुना. पति जी.के. पिल्लई उनके बैचमेट भी थे. उनसे सुधा की पहली मुलाक़ात मसूरी के नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (जिसे अब लाल बहादुर शास्त्री नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन कहा जाता है) में हुई थी. उसके बाद दोनों इतने मज़बूत बंधन में बंधे, जो अभी तक स्थिर और तरोताज़ा है. एक ही पेशे में होने के कारण दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ गए. सुधा बताती हैं कि, गोपाल नियुक्ति और कामकाज से दूर भी रहते थे, तब भी वह उनको समझ सकती थीं. नौकरी में आने के बाद जो दबाव बनता है उससे वह भलीभांति परिचित थीं. शुरुआती दौर की एक मज़ेदार घटना बताते हुए सुधा कहती हैं कि जब दोनों की नियुक्ति अलग-अलग जगहों पर हुई थी, उस वक़्त सुधा अपने पति से मिलने केरल के क्वीलन गई थीं, जहां उनके पति की नियुक्ति हुई थी. उस वक़्त जीके पिल्लई के पास सुधा को फिल्म दिखाने तक के लिए पैसे नहीं थे. तब उन्होंने पुराने अख़बार बेचकर सुधा को जूली फिल्म दिखाई. जब हमने उनसे यह सवाल पूछा कि मैडम, आपने उनके साथ हाल में कौन सी फिल्म देखी है तो उन्होंने जवाब दिया कि अभी पिछले हफ्ते शाकुंतलम में देखी.

काम में कुशल और सिद्धांतवादी सुधा पिल्लई को मेहनती महिला के तौर पर भी जाना जाता है. वह बताती हैं, शुरुआत से ही कार्यालय से निकलने के बाद काम की बातें दफ्तर में ही छोड़ देती हूं. फाइलों को कभी रोका नहीं और कार्यालय का काम भी कभी घर पर नहीं किया. पांच दिन कार्यालय में काफी काम करती हूं और शेष दो दिन रचनात्मक और अन्य काम करना मेरी आदत में शुमार है. करियर के शुरुआती दिनों में सुधा पिल्लई श्रम और रोजगार मंत्रालय में सचिव के पद पर नियुक्त होने से पहले कई वाणिज्य, खनन, वित्त, पंचायती राज, ग्रामीण विकास और गृह जैसे मंत्रालयों में सेवा दे चुकी हैं. श्रम मंत्रालय से योजना आयोग में सचिव के पद पर उनकी नियुक्ति अब लगभग होने ही वाली है. उन से श्रम क्षेत्र से जुड़े विभिन्न मसलों पर *अंजुम ए. ज़ैदी* और *एस रिज़वी* ने बात की.

श्रम मंत्रालय में आप कुछ दिन और रहेंगी. कुल मिलाकर कैसा अनुभव रहा?

हां, मैं श्रम मंत्रालय में कुछ दिन और रहूंगी. मैंने सोचा था कि मैं तीन अगस्त 2009 को अपना मंत्रालय बदल लूंगी, लेकिन देर हो गई. इस मंत्रालय में कार्यकाल काफी व्यस्त रहा. इस दौरान हमने बहुतेरे मुद्दों पर काम किया. इनमें से कुछ विचाराधीन हैं, कुछ को चुनाव और नई सरकार के गठन के चलते मंज़ूरी नहीं मिली. बहुत से बिल अभी रुके पड़े हैं, जिनमें संशोधन की ज़रूरत है. हम कई क्षेत्रों पर काम कर रहे हैं:- जैसे माइंस एक्ट, फैक्टरी एक्ट, ग्रैच्यूटी एक्ट, वुमन कंपनसेशन लॉ, इंप्लॉयर प्रोविडेंट फंड लॉ और ईएसआईसी लॉ वग़ैरह. वैसे तो तीन विधेयकों को कैबिनेट ने स्वीकृति दे दी है, पर वे संसद में पेश नहीं हुए हैं. बाक़ी बचे विधेयकों की प्रक्रिया पीसी चतुर्वेदी पूरी करेंगे.

मैडम, यह एक बड़ी कामयाबी है. आप इसे किस नज़रिए से देखती हैं?

मूलत: यह सभी देशों का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि उसके कामगार तंदुरुस्त, सुरक्षित और प्रशिक्षित हों. ये सभी हितकारी क़दम हमने श्रम मंत्रालय में उठाए. इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि हमारे कामगार अंतरराष्ट्रीय स्तर के हों. इसलिए उन्हें सुरक्षा मुहैया कराना आवश्यक है.

उन्हें यह चिंता करने कि ज़रूरत नहीं है कि अगर वे बीमार पड़ गए तो उनका क्या होगा? हमारे देश में कामगारों की जो मूलभूत समस्या है, वह यह कि वे अशिक्षित हैं. इसके बाद या तो वे कुशल कामगार नहीं हैं या फिर उन्हें ठीक से प्रशिक्षित नहीं किया गया है. जिसके चलते कई घटनाएं घटती रहती हैं. ये सभी एक-दूसरे से जुड़े मसले हैं और इसलिए संबंधित मंत्रालय यह सुनिश्चित करे कि कामगारों के हित सुरक्षित रहें.

निजी क्षेत्र में कामगारों के शोषण की बात अक्सर की जाती है. मंदी के दौर में आपने कौन से एहतियाती क़दम उठाए?

सुरक्षा कवच क़ानून में है और हमारे यहां जो क़ानून है वह बहुत हद तक दूसरे देशों से अलग नहीं है. हमारा क़ानून इस मसले पर ज़ोर देता है कि घटना होने के बाद उचित सुरक्षा और मौत होने पर मज़दूर के परिवार को उचित मुआवज़ा देना चाहिए. वैसी इकाई, जहां 100 से अधिक कामगार काम करते हैं-को नियम के अनुसार इकाई बंद करने से पहले सरकार से अनुमति लेनी चाहिए. यही एक ऐसा क्षेत्र है, जहां इंडस्ट्री (प्राइवेट सेक्टर) बदलाव चाहती है. वास्तव में इसके बारे में सरकार ने बहुत सोचा कि क्या करना चाहिए? समस्या यह है कि बहुत सी कंपनियां अनुबंध पर श्रमिकों को लेते समय इस प्रावधान से कतराती हैं. जब इस मंत्रालय में मैं आई, तब मुझे यह समस्या विरासत में मिली. इसलिए अनुबंधित श्रम नियम में कामगारों को उचित मुआवज़ा देने और सामाजिक सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए अहम मुद्दे हैं. वास्तव में अनुबंधित श्रम हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और हम अनुबंधित श्रम के नियम को बदलने के लिए बातचीत कर रहे हैं. हम इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं. इस संबंध में कुछ बैठकें भी हुई हैं. फरवरी 2009 में हुए भारतीय श्रम सम्मेलन के बाद इसकी देखरेख के लिए एक टास्क फोर्स गठित किया गया. यह वार्षिक आयोजन है, जिसे श्रम मामलों की संसद के तौर पर भी देखा जा सकता है. इसकी अहम विशेषता यह है कि इसमें श्रमिकों की राय भी ली जाती है. इस तरह की व्यवस्था किसी अन्य मंत्रालय में नहीं है.

निजी क्षेत्र में श्रम सुधार के लिए किस तरह की मांगें हैं?

पहली बात तो यह कि वास्तव में निजी क्षेत्र औद्योगिक विवाद क़ानून के अध्याय पांच से कुछ अलग करना चाहता है. दूसरी, यह कि वे फैक्ट्रीज लॉ में कुछ बदलाव चाहते हैं. यह श्रमिकों के अधिक घंटे तक काम करने से संबंधित है. वे साप्ताहिक आधार पर काम की अवधि को 60 घंटे तक विस्तारित करना चाहते हैं. आर्थिक सर्वेक्षणों में भी यह बात उभर कर सामने आई है. लेकिन यह मांग सामान्य होने के बजाय काफी जटिल है. इसलिए वर्तमान में जो नियम है, उसमें हम बदलाव कर रहे हैं. जहां हम काम की अवधि के साथ ही ओवर टाइम का भी भुगतान करने की मंजूरी देने जा रहे हैं. लेकिन समस्या यह है कि हम काम करने की अवधि सप्ताह में 60 घंटे से अधिक बढ़ा नहीं सकते.

सुरक्षा कवच क़ानून में है और हमारे यहां जो क़ानून है वह बहुत हद तक दूसरे देशों से अलग नहीं है. हमारा क़ानून इस मसले पर ज़ोर देता है कि घटना होने के बाद उचित सुरक्षा और मौत होने पर मज़दूर के परिवार को उचित मुआवज़ा देना चाहिए. वैसी इकाई, जहां 100 से अधिक कामगार काम करते हैं-को नियम के अनुसार इकाई बंद करने से पहले सरकार से अनुमति लेनी चाहिए. यही एक ऐसा क्षेत्र है, जहां इंडस्ट्री (प्राइवेट सेक्टर) बदलाव चाहती है. वास्तव में इसके बारे में सरकार ने बहुत सोचा कि क्या करना चाहिए? समस्या यह है कि बहुत सी कंपनियां अनुबंध पर श्रमिकों को लेते समय इस प्रावधान से कतराती हैं.

सुधा पिल्लई, सचिव, श्रम और रोजगार मंत्रालय.

स्थायी रोज़गार के बारे में आपकी क्या राय है?

निर्यात के क्षेत्र में वे तयशुदा अवधि के रोज़गार की सोच रहे हैं. इसका मतलब यह हुआ कि एक बार ऑर्डर पूरा हो जाए, तो वह श्रमिकों की छंटनी कर सकें. मज़दूरी की आउटसोर्सिंग तेज़ी से बढ़ रही है और यह सभी क्षेत्रों, यहां तक कि पत्रकारिता में भी फैल गया है. एक मात्र बदलाव यह है कि यहां मज़दूरी ढंग से और समय पर दी जाती है, साथ ही सामाजिक सुरक्षा भी संतोषप्रद ढंग से मुहैया कराई जाती है.

बिना किसी सूचना के आधार पर छंटनी की बात कही जा रही है?

यह काफी जटिल मामला है. इंडस्ट्री सिर्फ़ और सिर्फ़ हायर एंड फायर पॉलिसी पर बात कर रही है. वास्तव में इस दिशा में ईएसआईसी के वर्तमान डायरेक्टर ने अच्छी शुरुआत की है. जहां हमने इंडस्ट्री को स्वयं प्रमाणित करने की मंज़ूरी दी है. वास्तव में इंस्पेक्टर राज उद्योग जगत को काफी परेशान करता है. अगर इंडस्ट्री अच्छा कर रही है, तब हायर एंड फायर का सवाल ही नहीं उठना चाहिए.

क्या श्रम मंत्रालय ने मंदी, मुख्य रूप से जिस तरह की समस्या का सामना एयरलाइंस ने किया है, से निपटने के लिए कोई योजना बनाई है?

मेरी व्यक्तिगत राय यह है कि अब एयरलाइंस क्या करने जा रहा है, यह पूरी तरह से अच्छी रणनीति पर निर्भर करता है. वास्तव उन्हें यह कुछ महीने पहले ही करना चाहिए था. एयर इंडिया के मामले में, हाल में ही उनके साथ बैठकें हुई हैं. उसमें हम ने कहा है कि नए चेयरमैन काफी कड़े हैं और वह कहानी को बदल कर ही रख देंगे, क्योंकि वह सरकार से पूंजी ला सकेंगे. प्राइवेट सेक्टर के एयरलाइंस की स्थिति अच्छी नहीं है, क्योंकि उन्होंने एयरक्रॉफ्ट ख़रीदने में काफी रक़म ख़र्च कर दी है. बोर्ड सर्विस पर भी वे अधिक ख़र्च करते हैं. इसलिए उन पर मंदी का असर पड़ा. वैसे यह समय मानसून और श्रम पलायन के कारण अनिश्चितताओं से भरा हुआ है. दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि इस अवधि में फल और सब्ज़ियों के दाम भी आसमान छूने लगे हैं. इतना ही नहीं, उनकी उपलब्धता भी कम हो गई है.

बाल श्रम के बारे में क्या कहेंगी? मंत्रालय इसका सामना कैसे कर रहा है?

मंत्रालय को इस बात पर गर्व है कि वह इस समस्या को न्यायोचित तरीक़े से हल कर रहा है. हमारे एनएलसीपी (नेशनल चाइल्ड लेबर प्रोजेक्ट) ने अच्छा काम किया है. हमने बच्चे को काम करने से बचाया है और उसे स्पेशल स्कूल में भेजा है. वहां उन्हें शिक्षा, वोकेशनल ट्रेनिंग, मिड डे मील, छात्रवृत्ति, हेल्थ केयर की सुविधा और अंत में शिक्षा की मुख्यधारा में शामिल करने की सुविधा मुहैया कराना है. हमारे पास 9000 स्कूल हैं और 0.45 मिलियन विद्यार्थी हैं. लगभग 48 लाख बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ा गया. ज़मीनी स्तर पर मंत्रालय इस मसले से निपटने के लिए हर संभव कोशिश कर रहा है.

काम की व्यस्तता के बावजूद आप अपनी रुचि के लिए कैसे समय निकालती हैं?

मैं पेंटिंग बनाती हूं और यह मेरी रुचि है. मैं कार्यालय में पांच दिन काफी काम करती हूं और शेष दो दिन व्यक्तिगत जीवन और पेंटिंग पर देती हूं. इस सबके बाद पढ़ना भी मेरी आदत में शुमार है. मुझे फिक्शन काफी पसंद है.

अंत में एक आख़िरी सवाल, क्या आप नई ज़िम्मेदारी के लिए तैयार हैं?

हां, मुझे योजना आयोग में नई ज़िम्मेदारी मिलने वाली है. योजना आयोग का काम बोर्ड आधारित है और वह रेवेन्यू और इंफ्रास्ट्रक्चर पर ज़ोर देता है.

विरोधी नहीं हैं काम, घर और पेंटिंग

सुधा पिल्लई एक कुशल प्रशासनिक अधिकारी के अलावा अच्छी पेंटर भी हैं, सुधा ब्रश और रंगों का उपयोग कर कैनवास पर अपनी कला का जादू बिखेरती हैं. सुधा जी को मुख्यतः उनकी एब्सट्रैक्ट पेंटिंग के लिए जाना जाता है, लेकिन उनके लैंडस्केप भी काफी बेहतर हैं जो दुनिया की उनकी व्याख्या को प्रस्तुत करते हैं. वह पेंटिंग और ड्राइंग तब से कर रही हैं, जब से होश संभाला है. पेंटिंग उन्होंने स्कूल में सीखी. इसके अलावा उन्होंने कोई प्रशिक्षण नहीं लिया है. महत्वपूर्ण पद पर होने के कारण रचनात्मक कला के लिए उनके सामाने कई समस्याएं थीं. उनकी पेंटिंग की प्रदर्शनी पहली बार तब लगी, जब उनका बेटा कॉलेज में गया. उन्होंने अपने जीवन के तीन अहम पहलू-काम, घर और पेंटिंग के बारे में विचार किया और पाया कि ये परस्पर विरोधी नहीं हैं. वह पेंटिंग सप्ताहांत या फिर छुट्टियों में ही बनाती हैं. पेंटिंग्स बनाने से उनको बहुत ख़ुशी और ऊर्जा मिलती है.

feedback@chauthiduniya.com

समस्या और सावधानी

भारत में इन दिनों एक नई महामारी जड़ें जमा रही है. अभी कुछ पहले दिनों तक एक अनजाना नाम रहे स्वाइन फ्लू ने अब लोगों के बीच आतंक और भय का माहौल पैदा कर दिया है. आइए डालते हैं इस नई लेकिन ख़तरनाक बीमारी के हर पहलू पर एक नज़र –

कैसे होता है संक्रमणः

स्वाइन फ्लू का वायरस एच1एन1 मानव-मानव संपर्क से फैलता है. जब कोई संक्रमित व्यक्ति छींकता या खांसता है तो उसके शरीर से संक्रमित तरल निकलता है. इसके संपर्क में आने वाला व्यक्ति इस वायरस का शिकार हो जाता है.

लक्षण

इसके शुरुआती लक्षण आम फ्लू की तरह हैं. इसमें बुख़ार, कफ, सिरदर्द, जोड़ों और पेशियों में दर्द, गले का ख़राब होना और नाक बहना और कभी-कभी उल्टी या डायरिया होना इसके लक्षण हैं.

कब हो सकता है संक्रमणः

लक्षण दिखने से एक दिन पहले से लेकर बीमार होने के सात दिनों बाद तक किसी को संक्रमित कर सकता है संक्रमित व्यक्ति.

कैसे बचाएं ख़ुद को

अभी एच1एन1 से बचने की कोई वैक्सीन उपलब्ध नहीं है. ऐसे में सावधानी ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है.

- खांसने या छींकने के समय अपने मुंह-नाक रूमाल या कपड़े से ढंक लें. इस्तेमाल के बाद उसे फेंक दें.
- अपने हाथ और मुंह बार-बार अच्छे साबुन से साफ करते रहें. ऐसे हैंड-क्लीनर्स इस्तेमाल करें जिनमें अल्कोहल का अंश हो.
- अपनी आंखों, नाक और मुंह को छूने से बचें. इसी तरह से कीटाणु फैलते हैं.
- ऐसे लोगों से संपर्क से बचें जो सांस की बीमारी से पीड़ित हैं.
- अगर आप फ्लू के शिकार हों तो आप घर में ही रहें, काम पर या ऑफिस न जाएं और दूसरों से कम-से-कम संपर्क करें. अगर आपको सांस लेने में तक़लीफ़ हो तो तुरंत नज़दीकी अस्पताल जाएं.

स्वाइन फ्लू

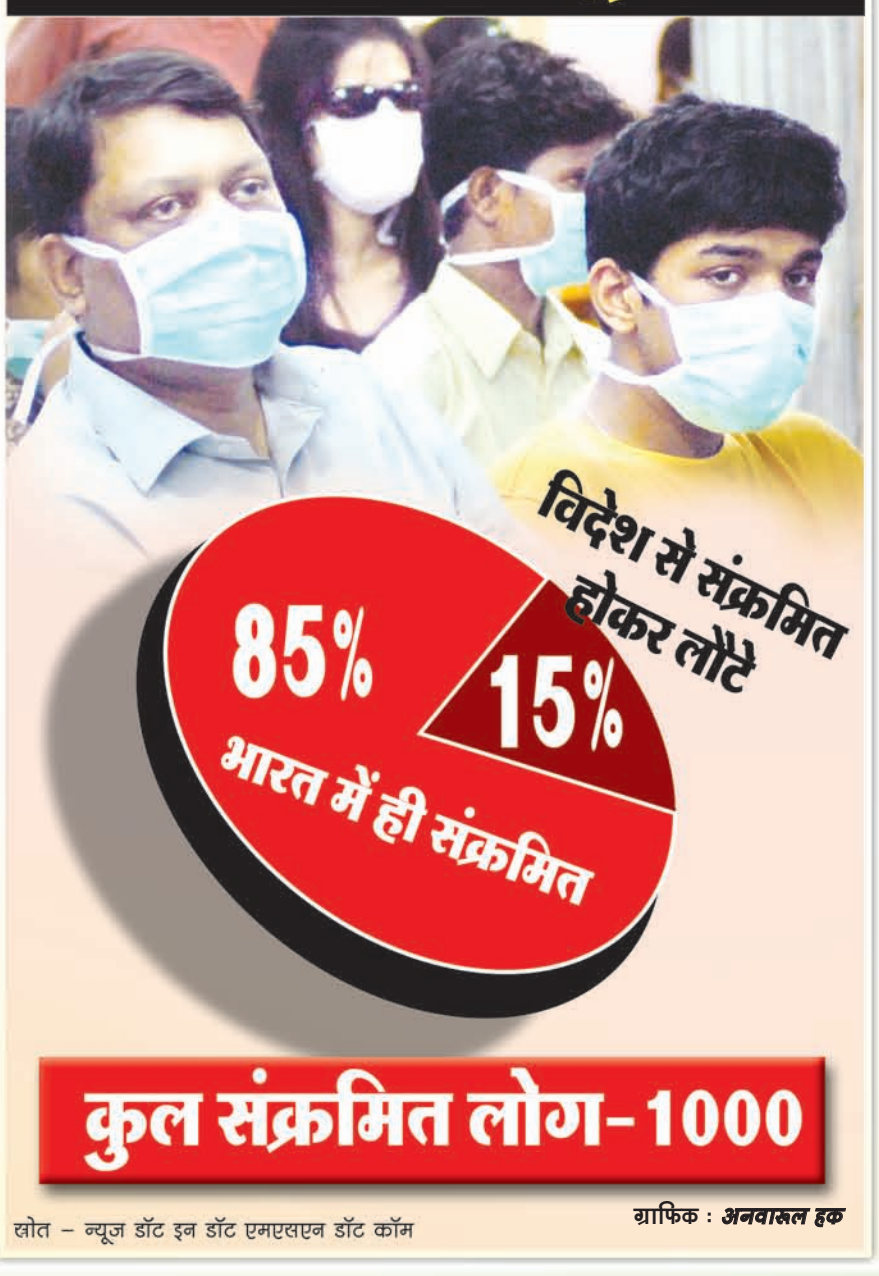

स्रोत – न्यूज़ डॉट इन डॉट एमएसएन डॉट कॉम

ग्राफिक : अनवारूल हक

क्या एच1एन1 की कोई दवा है

हां, ओसेल्टामिविर. यह इस फ्लू के इलाज और बचाव की दवा है. अगर आप बीमार पड़ते है तो एंटी-वायरल दवाओं से असर कम कर सकते हैं. इन दवाओं का असर तभी होता है जब उन्हें बीमार पड़ने के दो दिनों के भीतर ही लिया जाने लगे. इससे फ्लू ठीक न भी हो तो उसके गंभीर होने की संभावना कम हो जाती है.

बीमार पड़ने पर क्या करें

- अगर आप ऐसे इलाक़े में रहते हैं जहां स्वाइन फ्लू के मामले सामने आ चुके हैं और आप भी बुख़ार, खांसी, भारी गले, बदन दर्द, बहती नाक, घबराहट और घुटन महसूस कर रहे हैं तो अपने इलाक़े के स्वास्थ्य अधिकारी से मिलें.
- जांच के बाद ही पता चल सकेगा कि आप को स्वाइन फ्लू है या नहीं.
- अगर आप एच1एन1 के शिकार हों तो आप घर पर ही रहें, दूसरों से कम-से-कम संपर्क करें ताकि बीमारी न फैले. अगर आपको ज़्यादा तकलीफ हो तो तुरंत नज़दीकी अस्पताल में संपर्क करें.

बच्चों का ख़ास ध्यान रखें

बच्चे बता नहीं पाते कि उन्हें क्या समस्या है, ऐसे में बच्चों में कुछ बातों और लक्षणों पर ख़ास ध्यान देना पड़ता है.

- तेज़ी से सांस चलना या सांस लेने में दिक़्क़त होना.
- त्वचा का रंग नीला होना.
- ज़्यादा पानी या तरल नहीं पी सकना.
- सोए रहना या सुस्त होना.
- चिड़चिड़ाहट या झगड़ालू स्वभाव
- फ्लू के लक्षण आना और फिर तेज़ बुख़ार और खांसी होना.
- खुजली के साथ बुख़ार

बड़ों में भी कुछ ख़ास लक्षण हैंः

- तेज़ी से सांस चलना या सांस लेने में दिक़्क़त होना.
- छाती या पेट में दर्द या दवाब होना.
- अचानक चक्कर आना.
- मतिभ्रम
- लगातार उल्टियां होना.

करें

- हाथ साफ रखें.
- भीड़-भाड़ से बचें.
- फ्लू से पीड़ित लोगों से कम-से-कम एक हाथ की दूरी रखें.
- ख़ूब सोएं.
- ख़ूब पानी पिएं और तरल पदार्थ लें.

न करें

- किसी से मिलते वक़्त न हाथ मिलाएं और न ही गले मिलें.
- सार्वजनिक जगहों में न थूकें.
- बिना डॉक्टर से पूछे दवाइयां न लें.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

बच्चों का मन ज़िद से नहीं, प्यार से जीतें

रीतिका सोनाली

मम्मी, मैं नया वीडियोगेम लिए बिना स्कूल नहीं जाऊंगा – छह वर्षीय आकाश ने यह कहते हुए अपने आप को कमरे में बंद कर लिया. उसकी मां ने उसे समझाने की भरसक कोशिश की, पर आकाश था कि मानने वाला नहीं. जब तक उसकी मां ने नया वीडियोगेम लाकर देने का वादा नहीं किया, तब तक आकाश बाहर नहीं आया. ऐसे ही दूसरे बच्चे आर्यन ने अपनी मां को यह कहकर धक्का दे दिया कि वह आलू के परांठे नहीं खाना चाहता और उसे सिर्फ़ और सिर्फ़ कटलेट ही चाहिए. सिर्फ़ आकाश या आर्यन ही नहीं, कई ऐसे बच्चे हैं जो अपनी ज़िद मनवाने के लिए अपने अभिवावक को हद से ज़्यादा परेशान कर देते हैं. ऐसे में अभिभावक बच्चे को बहलाने-फुसलाने की कितनी भी कोशिश करें, पर बच्चे अपनी ज़िद से पीछे हटते ही नहीं. कभी-कभी तो बच्चों की मनमानी इतनी बढ़ जाती है कि शर्मनाक स्थिति पैदा हो जाती है. ऐसे में अभिभावक और बच्चे के बीच में एक अनकही जंग हो जाती है, कौन झुकेगा और अपनी बात पर अड़कर जीतेगा. हालांकि सभी बच्चे इतने ज़िद्दी नहीं होते, पर कई बार बच्चे अभिभावकों के लिए मुश्किल स्थिति पैदा कर ही देते हैं. अभिभावकों को यह स्थिति बहुत परेशान करती है और ऐसे में उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है-पलट कर गुस्सा करना या थप्पड़ जड़ देना. यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया भी बच्चों के ज़िद्दीपन के लिए आग में घी का काम करती है.

दिल्ली स्थित इंद्रप्रस्थ अपोलो अस्पताल की मनोचिकित्सक डॉ. मोनिका चीब के अनुसार बच्चों के ज़िद्दी होने के कई कारण होते हैं. इनमें सबसे महत्वपूर्ण है- उनकी परवरिश. बचपन से ही उन्हें अपनी इच्छाओं, आशाओं और उम्मीदों की सीमा का ज्ञान होना बहुत ज़रूरी होता है. उन्हें इस बात का बोध बचपन से ही होना चाहिए कि वे क्या कर सकते है और उन्हें क्या नहीं करना चाहिए. यदि ऐसा नहीं सिखाया गया तो बच्चे बड़े होते-होते अपनी बात मनवाना सीख लेते हैं. यदि न का बोध उन्हें नहीं हो तो अपनी ज़िद मनवाना ही उन्हें सबसे बेहतर लगता है जिससे उनकी इच्छाएं पूरी होती है. इस तरह से हर बात मनवाते हुए बड़े होने पर वे ज़िद्दी हो जाते हैं. बच्चे ज़िद्दी न हों, उसके लिए ज़रूरी है कि बच्चों में अच्छी आदतों का विकास शुरू से हो, शुरू से ही उनके काम करने का, खाने-पीने का, खेलने का समय निर्धारित कर दें, इससे उनमें अनुशासन के गुण आएंगे और वे स्थिति को समझेंगे. कई बार यह देखा गया है कि बच्चे लाड़-प्यार में ही बिगड़ जाते हैं, संयुक्त परिवार में घरवालों का लाड़ला होने की वजह से उनकी हर मुराद मुंह से निकलते ही पूरी हो जाती है या फिर एकल परिवार में बच्चे की झल्लाहट से बचने के लिए उन्हें उनकी मुंहमांगी चीज़ें मिल जाती हैं. इनसे आगे चलकर बच्चे ज़िद्दी हो जाते हैं. छोटे बच्चों यानी दो से तीन साल बच्चों के लिए ज़िद करना उनकी प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है. चूंकि उसने अभी-अभी *नहीं* शब्द सीखा होता है, इसलिए उन्हें हर बात में नहीं कहने की आदत होती है-जैसे आप कहें सो जाओ तो तपाक से जबाव होता है-नहीं. आप कहें खा लो तो फट से जबाव आएगा-नहीं, पर इससे परेशान न हों और इसे ज़िद भी नहीं कहें क्योंकि इस उम्र में बच्चे इतना ही जानते हैं. उन्हें समझाने की कोशिश करें और फिर वह मान जाएंगे. अगर ऐसी छोटी-छोटी बातों में आप चिढ़ेंगे, गुस्सा करेंगे या उनके ही सामने कहेंगे कि बच्चा ज़िद्दी है तब उसे अपनी ज़िद का बोध होगा और वे इसे अपनी आदत बना लेंगे.

बच्चों में ज़िद्दीपन को हमेशा से नकारात्मक रूप में देखा गया है, जबकि कई बार इसके सकारात्मक पहलू भी हो सकते हैं. इन पर ग़ौर करना भी बेहद ज़रूरी है. ऐसा भी हो सकता है कि बच्चे की ज़िद उसका अपना तरीक़ा हो, यह बताने का कि वह ख़ुद के लिए सोच सकता है और दृढ़ता से यह कह रहा हो कि वह अपने लिए फ़ैसले कर सकता है. कभी-कभी ज़िद उन्हें इस बात का अहसास दिलाती है कि वे किसी तरह की स्थितियों पर क़ाबू पाने में समर्थ हैं, जिससे उनका स्वाभिमान बढ़ता है. अभिभावक को बच्चे की जायज़ और नाजायज़ ज़िद के बीच में फ़र्क़ करना आना चाहिए. इसके लिए अभिभावकों को ज़िद की वजह के जड़ में जाना चाहिए. कभी बच्चे की ज़िद किसी अनजान, अचेतन डर की वजह से हो सकती है, तो कभी बदलाव के विरोध में तो कभी विद्रोह के रूप में या कुछ और. हर तरह की ज़िद की स्थिति में अभिभावक के पास केवल एक ही रास्ता होता है और वह है अनुशासन. अगर बच्चे की ज़िद मूल्यों, मान्यताओं या सुरक्षा के लिहाज़ से ग़लत साबित हो तो उन्हें यह तय कर लेना चाहिए कि किसी भी तरह उनकी ज़िद नहीं मानी जाएगी. ऐसी स्थिति में भी गुस्साएं या चिड़चिड़ाएं नहीं. बिल्कुल साधारण तरीक़े से अपनी बात रखें, उसके बाद बात मानने या नहीं मानने की भी वजह बताएं. उम्मीद है आपकी बात बच्चे को समझ में आ जाएगी. हो सकता वह थोड़ा नाराज़ हो लेकिन उसकी बात न मानें वरना वह इसका आदी हो जाएगा और कभी भी अपनी बात नहीं माने जाने पर वह यही रवैया अपनाएगा. यदि कभी ज़िद का विषय इतना नुक़सानदायक नहीं तब बच्चे के साथ मिल-जुल कर ही कोई बीच का हल निकालें. कभी-कभी उनकी बात मान लेने में कोई हर्ज नहीं है, यह बच्चे के लिए अपने आप में एक सरप्राइज गिफ्ट जैसा होगा.

ऐसा नहीं करने से, उसकी हर बात काटने से बच्चा अपने आप से असंतुष्ट हो जाता है, जो उसकी सेहत के लिए बुरा है. बच्चा यह सोचने लगता है कि वह अच्छा व्यक्ति नहीं है, सब उसे बुरा या ग़लत समझते हैं, कभी उसकी बात नहीं मानी जाती, हमेशा डांट पड़ती रहती है. ऐसे में वह बच्चा चिड़चिड़ा, गुस्सैल, लड़ाकू और आक्रामक हो जाता है और उसके बाद वह डिप्रेशन का शिकार हो सकता है. डिप्रेशन बच्चों के संपूर्ण और स्वस्थ विकास में बाधा बनता है. इस तरह बच्चे का बौद्धिक विकास भी कम हो जाता है.

ritika@chauthiduniya.com

इस तरह पाया जा सकता है बच्चों की ज़िद पर क़ाबू

- ज़िद करते हुए बच्चे की समस्या सुनें और उसका हल निकालने में उसकी मदद करें. ऐसे में उसे लगेगा कि आप भी उसकी तरफ़ से बोल रहे हैं.
- अगर आप अपने बच्चे से कुछ कराना चाहते हैं, जैसे कि अपना बिस्तर ठीक करना, दूध पीना तो उन्हें थोड़ा वक़्त दें और ऐसा समय तय कर दें जिससे वे जो कर रहे हैं जैसे- खेल आदि-उसमें खलल न पड़े. इससे वे कहे गए काम को करने में चिढ़ेंगे नहीं.
- अगर बच्चा किसी बदलाव से संतुष्ट नहीं है, तो उस पर ध्यान देकर यह समझने की कोशिश करें कि उसकी इच्छा क्या है, इसका हल क्या हो सकता है और यह हल कैसे उसकी अनिच्छा को इच्छा में बदलेगा.

आज भी नहीं मिल रही आदिवासियों को पहचान

शिव दास

बाबू, हमहन आदिवासी हइला. पास के जंगलवा में लकड़ी बिनके आउर मज़दूरी कइके अपन पेट पालिला जा. हमहन के बाउ-माई, दादा-दादी भी इहै काम करत रहलैं. लेकिन इ जवन सरकार है कि हमहन के आदिवासी मानबै ना करले. जबकि पास के राजवन में हमहन के रिश्तेदारन के सरकार आदिवासी मानलै. इहां के सरकार के चलतै हमहन के सरकारी जमीन पट्टा नाहीं होत बा. सरकार तीन पिढ़ियन के काग़ज़ मांगत बा. बतावा हमहन अनपढ़-गंवार कहां से इतना पुराना काग़ज़ पावल जाई.

सोनभद्र के घोरावल विकास खंड के पेढ़ गांव निवासी श्यामचरण कोल जिस दर्द को बयां कर रहे हैं, वह उत्तर प्रदेश में निवास करने वाली कोल, कोरवा, मझवार, धांगड़ (उरांव), बादी, मलार, कंवर आदि अनुसूचित जातियों के लाखों लोगों का दर्द है. श्यामचरण कोल सरीखे लाखों लोग जंगल से लकड़ी, कंदमूल आदि लाकर और मज़दूरी करके पेट की आग शांत कर लेते हैं, लेकिन सरकारी दाव-पेंच में फंसकर जेल की हवा खाने का ख़ौफ़ इन्हें हमेशा सालता रहता है. इस ख़ौफ़ की वजह ज़िला प्रशासन है. ज़िला प्रशासन ने अब तक सैकड़ों लोगों पर अवैध क़ब्ज़े का आरोप लगाकर जेल भेज दिया है, जो अभी भी जेल की हवा खाने को मजबूर हैं.

ग़ौरतलब है कि कोल, कोरवा, मझवार, धांगड़ (उरांव), बादी, मलार, कंवर सरीखी जातियों के लोग आदिकाल से जंगलों में निवास कर अपना जीवनयापन करते हैं. इसका वर्णन शास्त्रों में भी मिलता है. आज से क़रीब चार सौ साल पहले तुलसीदास ने रामचरित मानस में भी कोलों का वर्णन आदिवासी के रूप में किया है. भारत सरकार ने भी बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र समेत कई राज्यों में कोल, कोरवा, मझधार, धांगड़(उरांव), बादी, मलार, कंवर आदि जातियों को आदिवासी के दर्ज़े से नवाज़ा है. वहीं, जनसंख्या के लिहाज़ से देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में इन जातियों को अनुसूचित जाति में शामिल किया गया है. इस कारण इन जातियों के लोगों को अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) क़ानून-2006 यानी वनाधिकार क़ानून का लाभ नहीं मिल पा रहा है.

विसंगतियों भरे वनाधिकार क़ानून के प्रावधान के कारण वन विभाग की भूमि पर क़ाबिज़ आदिवासियों को ही आसानी से क़ब्ज़ा मिल पाता है. अन्य परंपरागत वन निवासियों को अब भी पूर्वजों की ज़मीन पर निवास करने अथवा खेती करने के अधिकार से वंचित रहना पड़ रहा है. वनाधिकार क़ानून में अन्य परंपरागत वन निवासियों के लिए उल्लिखित जंगल में पूर्वजों की तीन पीढ़ियों के निवास प्रमाण पत्र के प्रावधान ने कोल सरीखे पारंपरिक आदिवासियों को कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया है. इन प्रमाणों को प्रशासन के सामने पेश करने के लिए इन्हें काफी परेशानी उठानी पड़ रही है. इस कारण ये वनाधिकार क़ानून के लाभ से भी वंचित हो रहे हैं. प्रशासन उन्हें अतिक्रमणकारी बताकर जेलों में ठूंस रहा है. प्रशासन की कार्रवाई से यह प्रश्न उठने लगा है कि आख़िरकार आदिवासी कौन हैं? पारंपरिक रूप से वनों में रहकर उसके अवशेषों से गुज़र बसर करने वाले लोग या फिर राजनीतिक पार्टियों के नुमाइंदों द्वारा तैयार किए गए काग़ज़ के पुलिंदों में अंकित जातियों के लोग. उत्तर प्रदेश के सोनभद्र, मिर्ज़ापुर, चंदौली, इलाहाबाद, चित्रकूट, बांदा, ललितपुर, झांसी आदि ज़िलों में निवास करने वाली कोल जाति के क़रीब छह लाख (वर्ष 2001 की जनगणना के आधार पर 3,87,523) लोगों को वनाधिकार क़ानून का लाभ मिलता दिखाई नहीं दे रहा है, जबकि अन्य राज्यों समेत शास्त्रों तक में ये आदिवासी हैं. साथ ही उत्तर प्रदेश में कोलों की सामाजिक स्थिति काफी दयनीय है. इसका ख़ुलासा क़रीब सात साल पहले हुकूम सिंह कमेटी की रिपोर्ट में भी हो चुका है. रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश सरकार में कोल जाति का एक भी व्यक्ति समूह-क का अधिकारी नहीं हैं. समूह-ख में कोल जाति का मात्र एक व्यक्ति सरकारी सेवायोजन में अपनी सेवा दे रहा है. सूबे में 1.1 फ़ीसदी वाली कोल जाति के मात्र 0.25 फ़ीसदी लोग सरकारी संस्थानों में नौकरी कर रहे हैं. शेष आज भी जंगलों से लकड़ी, कंदमूल सरीखे अवशेष बेचकर और मज़दूरी करके अपना तथा अपने परिवार का पेट भर रहे हैं. फिर भी प्रशासन इन्हें उनकी पुस्तैनी ज़मीन से बेदखल कर रहा है. इसे लेकर पारंपरिक वन निवासियों (पारंपरिक आदिवासियों) और ज़िला प्रशासन के बीच आए दिन नोक-झोंक होती रहती है. इसकी जद में आकर ग़रीब पारंपरिक आदिवासी अपनी गाढ़ी कमाई कोर्ट और कचहरी में ख़र्च कर रहे हैं. इसके बावजूद सैकड़ों लोग मिर्ज़ापुर, वाराणसी और सोनभद्र की जेलों में जीवन व्यतीत करने को मजबूर हैं. उत्तर प्रदेश में कोल सरीखे पारंपरिक आदिवासियों के छिनते अधिकार पर सत्ताधारी अथवा ग़ैर-सत्ताधारी राजनीतिक पार्टियों के नुमाइंदें चुप्पी साधे हुए हैं. कोल बिरादरी से ताल्लुक रखने वाले बहुजन समाज पार्टी के पूर्व सांसद लालचंद कोल और भाईलाल कोल भी संसद में अपने समुदाय की आवाज़ बुलंद नहीं कर सके. इस कारण उन्हें संसद की सदस्यता से हाथ धोना पड़ा. क़रीब सवा लाख कोलों की आबादी वाले राबर्ट्सगंज संसदीय से अब समाजवादी पार्टी के पकौड़ी लाल कोल लोकसभा में लाखों कोलों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं. फिर भी कोलों के आदिवासी दर्ज़े की आवाज़ संसद में बुलंद नहीं हो रही. उधर, उत्तर प्रदेश के नक्सल प्रभावित जनपद मिर्ज़ापुर, चंदौली और सोनभद्र में जिला प्रशासन नक्सल के नाम पर कोलों को निशाना बना रहा है. राजनाथ सिंह सरकार के दौरान पुलिस ने वर्ष 2001 में मिर्ज़ापुर के भवानीपुर गांव में कोलों पर जो कहर ढाया वह आज भी लोगों के जेहन में सिहरन पैदा कर देता है. इसके कारण कोल जाति के लोग अपने हक़ की आवाज़ उठाने से कतरा रहे हैं. पूर्व में कुछ लोगों ने ज़िला प्रशासन की कारगुजारियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की ज़ुर्रत की थी. बदले में उन्हें जेल की सजा मिली और कई को पुलिस की गोली. ज़िला प्रशासन की इन कारगुजारियों के कारण सैकड़ों युवक अभी भी जेलों में बंद हैं. उत्तर प्रदेश में आदिवासी के अधिकार से वंचित कोल, कोरवा, मझवार, धांगड़ (उरांव), बादी मलार, कंवर आदि जातियों के लोग अपनी पुस्तैनी ज़मीन से बेदखल होने के बाद दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर हैं. साथ ही, उनकी अमूल्य नृत्य संस्कृति भी दम तोड़ रही है. आदिवासियों के वनाधिकार क़ानून समेत अन्य अधिकारों को लेकर कुछ सामाजिक और राजनीतिक संगठनों ने आवाज़ उठानी शुरू कर दी है. इन संगठनों में जन संघर्ष मोर्चा, वनवासी गिरिवासी और श्रमजीवी विकास मंच का नाम प्रमुख है. राजनीतिक संगठन जन संघर्ष मोर्चा चंदौली, मिर्ज़ापुर और सोनभद्र में आदिवासियों के मुद्दे को लेकर आए दिन धरना-प्रदर्शन कर रहा है. अक्टूबर के पहले सप्ताह में मोर्चा नई दिल्ली में आदिवासियों के मुद्दे को लेकर धरना-प्रदर्शन करने जा रहा है. इन सामाजिक और राजनीतिक संगठनों के प्रयास से वनाधिकार क़ानून के लाभ से वंचित आदिवासियों ने भी धीरे-धीरे अपनी आवाज़ उठानी शुरू कर दी है, जो भविष्य में सत्ताधारी पार्टियों के लिए परेशानी का शबब बन सकता है. अगले साल होने वाले पंचायत चुनावों और 2012 के विधानसभा चुनावों में पारंपरिक आदिवासी राजनीतिक नुमाइंदों से पूछ सकते हैं - वास्तविक आदिवासी कौन?

feedback@chauthiduniya.com

राशिफल

(17 अगस्त से 23 अगस्त तक)

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)

अगर किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं तो उसमें सफलता मिलने का योग बना हुआ है. मानसिक एवं शारीरिक सुख में वृद्धि होगी. मकान, संपत्ति रुपये-पैसे को लेकर चली आ रही समस्या का समाधान हो जाएगा. इस सप्ताह आपके लिए लाभ के कई अवसर आ सकते हैं.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)

रचनात्मक कार्यों की दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल होगा. आप अगर शासन सत्ता से सहयोग या क़र्ज़ लेना चाहते हैं, तो मिल सकता है. अचानक से अनचाहे लोगों से मिलना हो सकता है. दुर्घटना होने की आशंका है. आर्थिक क्षेत्र में किसी प्रकार का जोख़िम न उठाएं.

मिथुन (21 मई से 20 जून)

आपकी किसी संबंधित अधिकारी या अधीनस्थ कर्मचारी के साथ अनबन हो सकती है, जिसके कारण आपको तनाव हो सकता है. स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं. इसलिए खान-पान पर विशेष ध्यान दें. वैसे, आपको अपनी वाणी की मधुरता के कारण हर तरफ़ सम्मान मिलेगा.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)

परिवार के साथ समय ख़ुशी-ख़ुशी व्यतीत करेंगे. पूरे सप्ताह मन प्रसन्न रहेगा. जहां तक आर्थिक स्थिति की बात है, तो क़र्ज़ लेने से बचें. किसी संबंधी या मित्र के साथ चली आ रही ग़लतफहमी दूर हो जाएगी. प्रवास की स्थितियां बन रही हैं, जो लाभदायक भी हो सकता है.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)

जीवनसाथी का भरपूर सहयोग मिलेगा. साथ ही संतान के दायित्व की पूर्ति होगी. ज़्यादा भावुक होना आपके लिए कष्टकारी हो सकता है, इसलिए अपनी भावुकता पर नियंत्रण बनाए रखें. घर में भौतिक सुख-सुविधाओं की वस्तुएं बढ़ेंगी, लेकिन अधिक ख़र्च होने की संभावना भी है.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)

किसी बात को लेकर ज़्यादा न सोचें, क्योंकि इससे परेशानी के सिवाय कुछ हाथ आने वाला नहीं है. जीवनसाथी का भरपूर सहयोग मिलेगा. परिवार के लिए जो आप प्रयास कर रहे हैं, उसमें सफलता निश्चय ही मिलेगी. आर्थिक मामलों में किया जा रहा प्रयास सफल होगा.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)

मनोरंजन के अवसर आएंगे. सभा-समारोहों का आयोजन कर सकते हैं. रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति अपने स्वास्थ्य पर ध्यान दें. आपके साथ अचानक कुछ ऐसा हो सकता है, जिससे लाभ प्राप्त होगा. संबंधियों के साथ निकटता बढ़ेगी. आपके कुछ कार्य सफल होंगे, जिसकी वजह से उपहार और सम्मान प्राप्त होंगे.

वृश्चिक (21 अक्तूबर से 20 नवंबर)

सामाजिक क्षेत्र में मान-प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी होगी. सामाजिक कार्यों के लिए आगे रहेंगे. अनचाही यात्रा करनी पड़ सकती है. वैसे छोटी बात पर ख़ुश होकर कोई जोख़िम भरा कार्य करने की न सोचें. धैर्य बनाएं रखें. किसी प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं तो उसमें सफलता मिलने का योग बना हुआ है.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)

किसी को कोई ग़लत बात न कहें, क्योंकि विवाद की स्थिति बनी हुई है. दुश्मनों से कोई ख़तरा न मोल लें, तो अच्छा रहेगा. धन, सम्मान, पद, प्रतिख़ की दिशा में चल रहे प्रयास सफल साबित होंगे. संतान के दायित्व की पूर्ति होगी.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)

आमोद-प्रमोद के सुखद अवसर मिलने की संभावना है. भौतिक सुख-साधनों पर आपका ख़र्च अधिक होगा, नियंत्रण बनाए रखने में ही भलाई है. शासन-सत्ता का भरपूर सहयोग मिलेगा. किसी विवादित मामले को हल करने की दिशा में किया जा रहा प्रयास सफल रहेगा.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)

प्रतियोगी परीक्षा की दिशा में चल रही मेहनत रंग लाएगी. परिवार में ख़ूब प्रतिष्ठा और सम्मान मिलेगा. साथ ही उत्साह और लगन में वृद्धि होगी. आपसी संबंध में और अधिक सुधार होगा. आर्थिक क्षेत्र में आय के नए मार्ग खुलेंगे.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)

जीवनसाथी का भरपूर सहयोग मिलेगा. धन संबंधी लेन-देन में सावधानी बरतनी ज़रूरी है, नहीं तो विवाद की स्थिति पैदा हो सकती है. नौकरी के लिए आप प्रयास कर रहे हैं तो उसमें सफलता मिलने की संभावना है. आर्थिक मामलों में चल रहा प्रयास सफल रहेगा.

ज्योतिषाचार्य पं. सुदर्शन

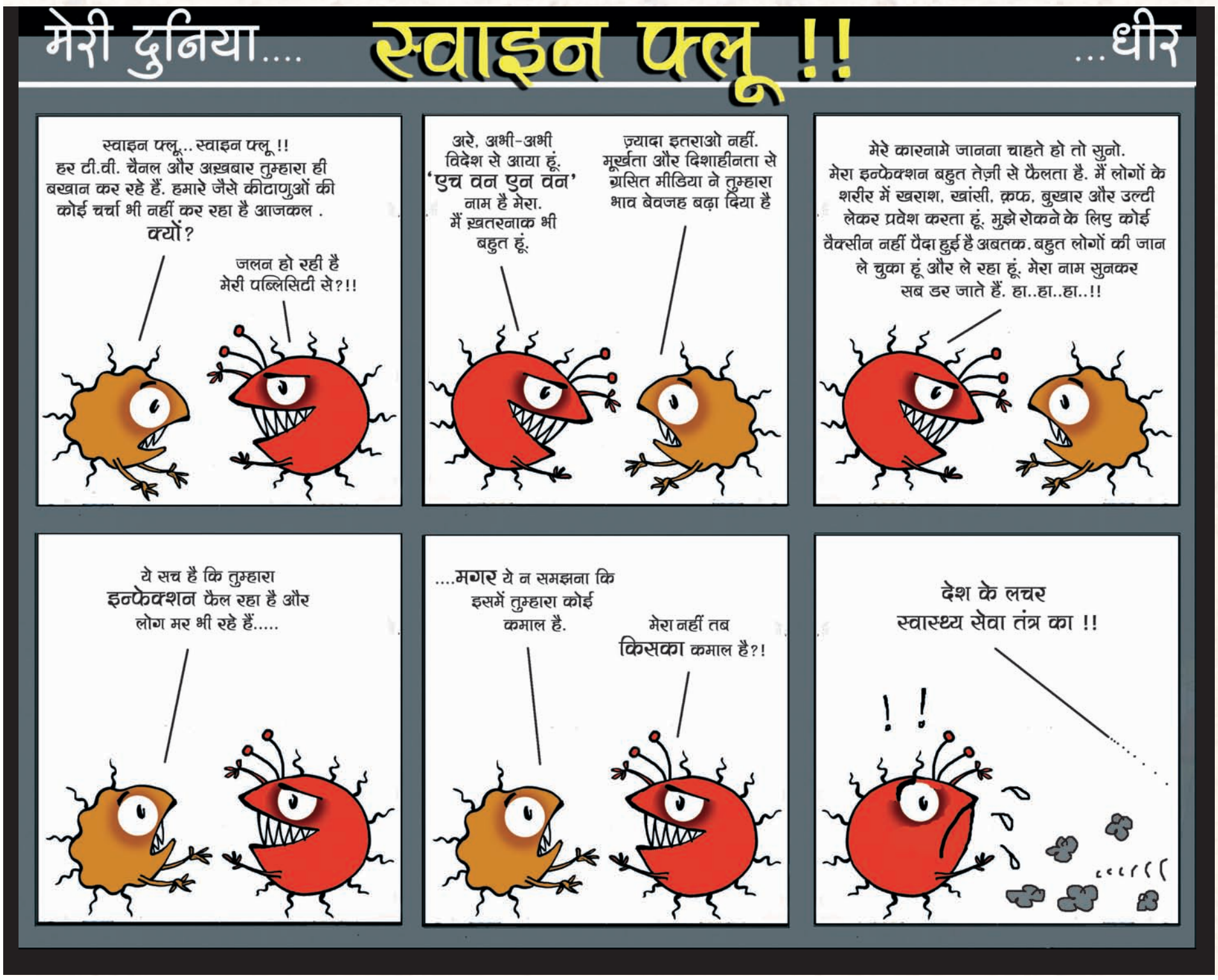

गांधी, इश्क और भूत

अनंत विजय

आधुनिक भारत के इतिहास में महात्मा गांधी एक ऐसी शख्सियत हैं, जिनके व्यक्तित्व की गुत्थी सुलझाना विद्वानों के लिए एक चुनौती है. महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के इतने आयाम हैं कि एक को पकड़ो तो दूसरा छूट जाता है. गांधी भारत ही नहीं, विश्व के इकलौते ऐसे शख्स हैं जिनकी मृत्यु के साठ साल बाद भी उन पर और उनके विचारों व लेखन पर लगातार शोध हो रहे हैं और हर बार कुछ न कुछ नया निकल कर आता है. अभी पिछले दिनों मैंने राजमोहन गांधी की किताब– *मोहनदास : अ ट्रू स्टोरी ऑफ ए मैन, हिज पीपुल एंड एन एंपायर* पढ़ी. इस किताब में राजमोहन गांधी ने बताया है कि महात्मा गांधी को पचास साल की उम्र में इश्क हो गया था. पचास साल की उम्र में मोहनदास को प्यार हुआ एक 47 साल की शादीशुदा महिला सरला देवी से. सरला देवी नोबल पुरस्कार विजेता कवि लेखक रवींद्रनाथ टैगोर की बहन स्वर्ण कुमारी की बेटी थीं. दोनों के बीच का प्यार इस कदर परवान चढ़ा कि गांधी जी उस रिश्ते को स्प्रीचुअल मैरेज तक मानने लगे थे. सरला देवी ने 1901 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में संगीत का कार्यक्रम पेश किया था और वहीं मोहनदास ने पहली बार उनको देखा था. लेकिन इसके बाद के अठारह सालों में दोनों के बीच क्या कोई संबंध रहा या नहीं यह ज्ञात नहीं है. लेकिन 27 अक्टूबर 1919 को गांधी जी ने लाहौर से अनुसूया बेन को अपने पत्र में लिखा– सरला देवी का साथ बहुत ही ख़ुशनुमा और प्यारा है और वह मेरी बहुत ही अच्छी तरह देखभाल करती है. इस दौर में गांधी के क़रीबी सारे लोग मसलन उनके पुत्र देवदास, महादेव देसाई, मथुरादास और राजगोलपालाचारी इस रिश्ते के बारे में जानते थे. इसके अलावा साबरमती आश्रम में भी गांधी और सरला देवी के रिश्तों की चर्चा थी. गांधी जी की पत्नी कस्तूरबा को जब इस रिश्ते का पता चला तो वह काफी तनाव में रहने लगी थीं. ऐसा नहीं है कि गांधी और सरला देवी के इस प्रेम–प्रसंग की बात पहली बार सामने आई. इसके पहले भी राजमोहन गांधी ने *द गुड बोटमैन* में इस संबंध के बारे में लिखा है. इस संबंध की चर्चा गांधी के *सेलेक्टेड वर्क्स* में भी है. हां, गांधी ने अपनी आत्मकथा में इसका ज़िक्र नहीं किया है. हो सकता है कि उस वक़्त सरला देवी जीवित थीं और महात्मा उनको हर्ट नहीं करना चाहते हों.

कुछ वक़्त पहले गिरिजा कुमार ने भी अंग्रेजी में एक किताब लिखी थी–*ब्रह्मचर्य, गांधी एंड हिज वुमन एसोसिएट्स.* इसमें भी गांधी के सेक्सुअल लाइफ के बारे में लिखकर लेखक ने सस्ती लोकप्रियता पाई थी और तब किताब को सस्ती लोकप्रिय किताबों में शुमार किया गया था. गांधी और मीरा बेन के संबंधों को लेकर सुधीर कक्कड़ ने भी *मीरा और महात्मा* लिखकर एक वितंडा खड़ा कर दिया था. कक्कड़ की इस किताब में साबरमती आश्रम में रहने के दौरान मीरा बेन और महात्मा के संबंधों पर लेखक ने लिखकर यह साबित करने की कोशिश की यह संबंध पवित्र नहीं था. मीरा बेन और गांधी के इस संबंध का विस्तार से ज़िक्र महादेव देसाई ने भी अपनी डायरी में किया है. लेकिन गांधी के पौत्र राजमोहन गांधी ने सात सौ पृष्ठों में लिखी गांधी की इस जीवनी में सिर्फ़ चार पन्नों में गांधी और सरला देवी के बीच के प्यार पर लिखा है. गांधी और सरला देवी के बीच के प्यार और प्रेम में सेक्स की ओर इशारा नहीं है.

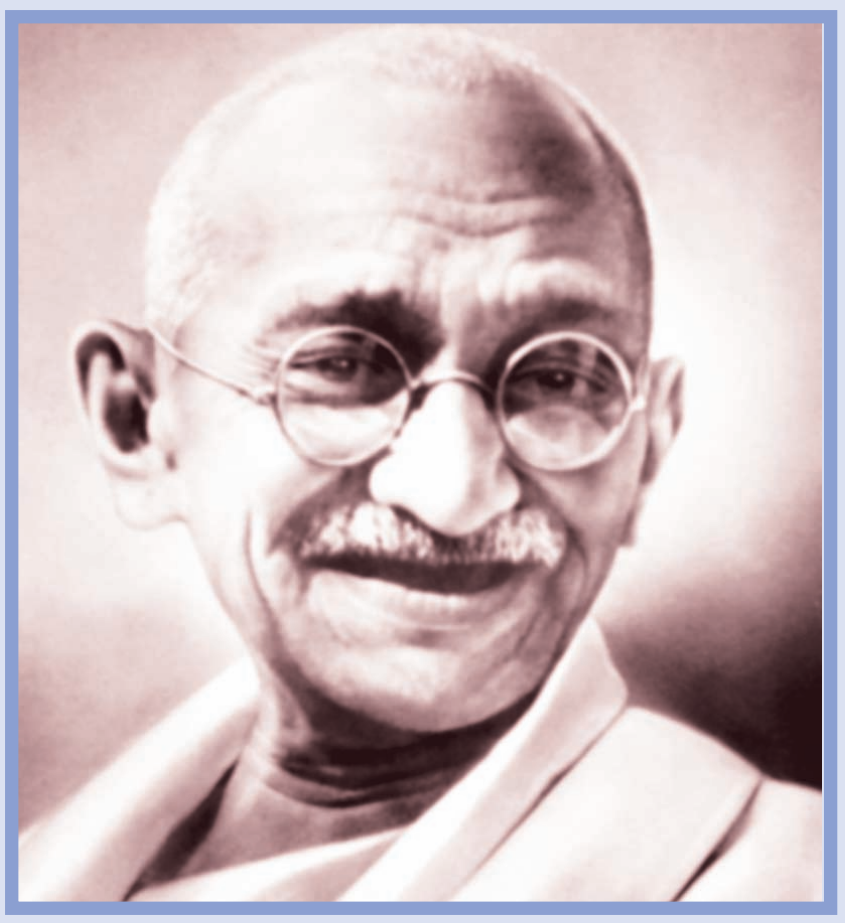

राजमोहन गांधी की इस किताब में से सिर्फ़ इन चार पन्नों का ज़िक्र बेमानी होगा. इस पूरी किताब में राजमोहन गांधी ने बापू को एक नए सिरे से समझने और समझाने की कोशिश की है. एक अनुमान के मुताबिक गांधी पर अब तक तीन हज़ार से ज़्यादा किताबें लिखी जा चुकी हैं, लेकिन राजमोहन गांधी की यह किताब इस मायने में थोड़ी अलग और दिलचस्प है कि इसमें लेखक ने गांधी और उनके व्यक्तित्व को परखने की कोशिश न करके पारिवारिक वातावरण में अनावृत्त करने की कोशिश की है. इस किताब में राजमोहन गांधी ने मोहनदास के बारे में भारतीय युवाओं या यूं कहें कि नई पीढ़ी के मन में उठने वाले सवालों या जिज्ञासाओं– गांधी का रोज़मर्रा का जीवन कैसा था, वह विरोधियों के साथ कैसा बरताव करते थे, उनका व्यक्तिगत जीवन कैसा था, पारिवारिक रिश्ते कैसे थे, कैसे उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुक़ाबला किया आदि–को संतुष्ट करने का प्रयास किया. राजमोहन गांधी ने इस किताब में गांधी जी के बचपन, किशोरावस्था, लंदन और दक्षिण अफ्रीका में बिताए उनके दिनों और भारत की आज़ादी की लड़ाई के दिनों की कहानी को सोलह अध्याय में बयान किया है. इस किताब में गांधी जी को किशोरावस्था में कैसे मांस और मदिरा की लत लगी और किस तरह वह अपने ऊपर लगी पाबंदियों से तंग आकर धथूरा का बीज खाकर ख़ुदकुशी की सोचने लगे थे, उसका भी ज़िक्र है.

तेरह साल की उम्र में गांधी जी का विवाह कस्तूरबा से हुआ. यहां भी एक दिलचस्प वाक़या हुआ. गांधी जी बचपन में भूतों से डरते थे. भूतों के डर से वह रात में अकेले नहीं निकलते थे. इसके अलावा रात के अंधेरे में उनको नींद नहीं आती थी, जबकि कस्तूरबा बहुत ही निडर और बोल्ड थीं. इस बात से मोहनदास को अंदर ही अंदर शर्मिंदगी महसूस होती थी. उन्होंने जब अपने दिल की ये बातें अपने भाई करसन और दोस्त मेहताब को बताईं तो मेहताब ने उन्हें मांस खाने और शराब पीने की सलाह दी. इस पर मोहनदास ने अमल करने की कोशिश भी की.

मोहनदास की ज़िंदगी के इस तरह के कई दिलचस्प प्रसंग इस किताब में है, पर ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ इस तरह के प्रसंग ही इस किताब में हैं. इसके अलावा भी इसमें गांधी के संघर्षों के कई स्तर और आयाम हैं. कहना न होगा कि यह किताब एक तरह से गांधी के निजी जीवन के बहाने भारत की आज़ादी की लड़ाई का इतिहास भी बताते चलती है. निजी जीवन से आगे निकल कर मोहनदास कैसे अंग्रेजों के ख़िलाफ़ लड़ाई के लिए प्रेरित हुए और कैसे करोड़ों लोगों को एकजुट किया, इसकी भी दास्तां यह किताब बयां करती है.

अंत में इस किताब के बारे में यह कहा जा सकता है कि राजमोहन गांधी ने कई गंभीर विषयों की सैकड़ों कहानियों को एक साथ इस तरह से पिरोया है कि यह पूरी किताब एक थ्रिलर की तरह है. आज जब एक बार गांधी की फिल्मों के माध्यम से ब्रैंडिंग और पैकेजिंग की कोशिश हो रही है, वैसे में राजमोहन की यह किताब मोहनदास और महात्मा दोनों को शिद्दत से सामने लाती है. इस जीवनी की यह ख़ास बात है कि इसमें राजमोहन गांधी ने महात्मा के अलावा भी उनकी ज़िंदगी में आए लोगों को ख़ासा स्पेस दिया है. आमतौर पर महात्मा पर अब तक लिखी पुस्तकें या तो श्रद्धाभाव से लिखी गई हैं या फिर हंसराज रहबर जैसे लोगों ने गांधी के व्यक्तित्व की धज्जियां उड़ाने की कोशिश कर ख़ुद को प्रचारित करने की कोशिश की है. लेकिन राजमोहन की इस किताब में गांधी के पारिवारिक जीवन के अलावा पोरबंदर की कई ऐसी घटनाओं का ज़िक्र भी है, जिसका असर बाद में गांधी के जीवन पर पड़ा. इस किताब को जब पढ़कर मैंने ख़त्म किया तो मुझे महसूस हुआ कि गांधी को जानने–समझने में यह किताब उपयोगी है.

(लेखक आईबीएन7 से जुड़े हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

सनातन धर्म का बौद्ध कलेवर

व्यालोक

एक बड़े चिंतक हुए हैं–पूसिन. उन्होंने बौद्ध धर्म पर लिखते हुए एक बड़ी ग़ज़ब बात कही है. वह मानते हैं कि बौद्ध धर्म कोई नया धर्म नहीं, बल्कि वह तो सनातन धर्म का बौद्धीकरण करने की ही कोशिश थी. इसे क्या काफी हद तक ठीक न मान लिया जाए? आख़िर, बौद्ध धर्म में भी तो जो भावनाएं, विचार और संस्थाएं देखने को मिलती हैं, क्या उन्हें देखकर नहीं लगता कि वे सभी सनातन धर्म का बौद्धीकृत स्वरूप ही थे? सनातन धर्म के मूल तत्व क्या हैं? पुनर्जन्म का सिद्धांत, आवागमन की बातें, अवतारवाद और कर्मफल के अनुसार दंड या पुरस्कार मिलने की बात. यही बात अपने तेवर और अंदाज़ बदल कर बौद्ध धर्म में भी देखने को मिलती है. ये सारे सिद्धांत तो बीज रूप में सनातन धर्म में ही मौजूद थे, बस बौद्ध धर्म ने उसको नई शब्दावली दे दी. यहां तक कि सनातन धर्म में जो भगवान या त्राता का विचार था, वह भी नए स्वरूप में बौद्ध धर्म में आ गया. यह भले ही बौद्ध धर्म की महायान शाखा में ही क्यों न हुआ हो. भगवान या ईश्वर के जो विविध अवतारों और रूपों की अवधारणा सनातन धर्म में थी, वही चोर दरवाज़े से बौद्ध धर्म में बोधिसत्वों का रूप धर कर दाख़िल हो गई.

अगर सच पूछा जाए तो सनातन धर्म का विकास जिन–जिन दिशाओं में हो रहा था, उन्हीं दिशाओं में बौद्ध धर्म भी विकसित हो रहा था. महायान शाखा में भक्ति का पुट भी निश्चित तौर पर सनातन धर्म की ही देन थी. बौद्ध मत मुख्य तौर पर बुद्धिवाद की बात करता था. इसमें कर्मकांड, यज्ञ–हवन और अंधविश्वास का विरोध शामिल है. हालांकि यह भी बौद्ध धर्म का मौलिक आविष्कार तो नहीं ही कहा जा सकता. सनातन धर्म की अन्य शाखाओं, जैसे औपनिषदिक काल, वेदांत और नास्तिक दर्शन के वक़्त भी सनातन धर्म की इन बेहूदगियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई जाती रही थी. यहां तक कि बौद्ध मत का निराशावाद, ऊंची नैतिकता, कृच्छाचार (तपस्या से शरीर को दंडित करना) और मानवीयता–इन सब में से ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे बौद्ध धर्म का मूल कहा जा सके. ये सारे तत्व समय–समय पर सनातन धर्म में प्रकट होते रहे थे. बौद्ध धर्म ने बस उसे अपने तरीके और नए जोश से पेश कर दिया. महात्मा बुद्ध ने बस इन गुणों पर अधिक ज़ोर दिया और इसे ही धर्म का मूल आयाम बना दिया. इस हिसाब से देखें तो बुद्ध तो सनातन धर्म के शोधक थे, संहारक नहीं. इसका एक प्रमाण यह भी है कि पहले तो गृहस्थ बौद्ध बने ही नहीं, क्योंकि मान्यता थी कि संसार से विरक्त और त्यागी व संन्यासी लोग ही बौद्ध हो सकते हैं. दूसरी बात यह है कि जब गृहस्थों ने बौद्ध बनने की शुरुआत की, तो भी वे अधिकतर मामलों में सनातनी ही बने रह गए, क्योंकि उपनयन, विवाह और श्राद्ध वगैरह संस्कारों के लिए तो बौद्ध धर्म में कोई व्यवस्था ही नहीं थी.

यहां सवाल यह उठ सकता है कि आख़िर बौद्धों और ब्राह्मणों के बीच इतने तीव्र संघर्ष का कारण क्या था? इसका कारण कहीं से भी वैचारिक नहीं था. असल में बौद्धों ने यज्ञों और कर्मकांडों का पुरज़ोर विरोध किया, जिस पर बेचारे ब्राह्मणों की रोजी चलती थी. यही कारण था कि बौद्ध हमेशा ब्राह्मणों की आंखों की किरकिरी बने रहे और मौक़ा मिलते ही उन पर चढ़ाई कर दी गई. दूसरी वजह यह थी कि राज्याश्रय पाकर बौद्ध मठों में ख़ासी संपत्ति एकत्र हो गई थी. ब्राह्मण मठों पर हमला इसलिए करते थे या राजाओं के माध्यम से कराते थे, ताकि वहां मौजूद अकूत संपत्ति पर अपनी दावेदारी भी पेश कर सकें. ऐसे क्रूर हमलावरों में राजा शशांक और पांड्य वंश के राजा शामिल थे.

अंत में, बात बस इतनी ही कि बौद्ध धर्म का ब्राह्मणों द्वारा विरोध विशुद्ध स्वार्थ और राजनीतिक कारणों पर आधारित था या है, क्योंकि उनकी दुकान बंद होने वाली थी. दूसरे बौद्ध धर्म कुछ अलग नहीं बल्कि सनातन धर्म की ही एक और व्याख्या है.

vyalok@chauthiduniya.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि न्यूमोनिया से इक़बाल का शरीर पहले से कमज़ोर हो गया और भेसाड़िया ने भी उसकी कोई ख़ास मदद नहीं की. अब आगे पढ़िए कि उसके बाद क्या हुआ...

मुसलमान

उसका इशारा समझकर भेसाड़िया मूंछों में मुस्कुराया, कल पूरे दिन घर ही बैठे रहना, मैं कांटैक्ट करूंगा. अंत में उसने कहा.

इक़बाल कुछ पूछने जा रहा था कि उसे याद आ गया, जब वह पहली बार भेसाड़िया से मिलने क्राइम–ब्रांच (अपराध–शाखा) के मुख्य कार्यालय में गया था तो उसने इक़बाल के पते के साथ–साथ उसका कांटैक्ट नंबर भी नोट कर लिया था.

सूफ़ी! उसे अपनी आत्मकथा कहने से रोकते हुए मैंने पूछा, आपने कार चलाना कब सीखा?

घड़ियाल गोदी से तस्करी का माल टैक्सी में रखकर ले जाना पड़ता था, उसने जवाब दिया, टैक्सी ड्राइवर अपना न हो तो काम न चले. जब भी हम डॉक से माल लेकर निकलते, मैं उसकी बगल में बैठता और ध्यान से उसे ड्राइव करते देखता. धीरे–धीरे मैंने ख़ुद ड्राइवर के मार्गदर्शन में टैक्सी चलानी शुरू की. अलबत्ता उस समय मैं सिर्फ़ शौक़ के लिए चलाता था.

दूसरे दिन इक़बाल सूफ़ी सुबह से शाम तक घर बैठा रहा. दिन छुट्टी का था. पूरे दिन कोई काम नहीं था. बेकार बैठे–बैठे आख़िर वह ऊब गया. उसने अंतिम बार घड़ी की ओर देखा. (सुबह से अब तक वह कई बार देख चुका था.)

शाम के पांच बजे थे. बाहर एक चक्कर लगा आने की अपनी तीव्र इच्छा वह रोक नहीं सका. वह खड़ा हो गया. अभी उसने घर की चौखट के बाहर पहला क़दम रखा था कि उसकी नज़र सामने से आते हुए पड़ोसी पर पड़ी. गलियारे के बीच रुक जाते हुए उसने इक़बाल को बताया, तुम्हारा फोन है.

फौरन पड़ोसी के घर जाकर उसने फोन उठाया.

क्या कर रहा है बेटा? आवाज़ भेसाड़िसा की थी.

कुछ नहीं.

इस तरह बेकार नहीं बैठना चाहिए. वह कह रहा था, कॉलेज का लेसन करना चाहिए. अभी शुरुआत के दिन हैं, साहब. लेक्चर शुरू नहीं हुए. कॉलेज में भी टॉप क्लास आना चाहिए.

जी, साहब.

अब भेसाड़िया ने पते की बात की, छह बजे पेट्रोल पंप पर हाज़िर हो जाना. घूमने जाने के बजाए इक़बाल दो बसें बदलकर (हाजी अली जाने के लिए डोंगरी से सीधी बस नहीं है.) उसी पेट्रोल पंप पर पहुंचा. भेसाड़िया केबिन में बैठा था. उसे देखकर खड़ा हो गया.

यहीं बैठ, बेटा. अपनी कुर्सी की ओर इशारा करते हुए वह केबिन के दरवाज़े तक आया और बाहर निकलने से पहले कह दिया, मैं फिर फोन करूंगा. इक़बाल ने उसे जीप में बैठकर दौड़ जाते हुए दूर तक देखा और अपना चेहरा घुमाया. सामने बैठा मैनेजर अपने काम में व्यस्त था, शायद वह पूरे दिन का हिसाब जोड़ रहा था.

इक़बाल ने फिर अपना चेहरा घुमाया. उसकी निगाह शर्ट–पैंट पहनकर बायीं ओर बैठे पंजाबी पर पड़ी. कल भी वह यहां हाज़िर था. हो सकता है वह भेसाड़िया का आदमी हो. पर देखने में वह पुलिस का आदमी नहीं लगता था.

इक़बाल का उससे परिचय नहीं था, इसलिए उसने तुरंत अपनी नज़र हटा ली. केबिन के बाहर ग्राहकों की कार में पेट्रोल भरने का काम हमेशा की तरह जारी था. कारें–टैक्सियां आती थीं, थोड़ी देर रुकती थीं और टंकी में पेट्रोल भर जाने पर चली जाती थीं. केबिन के पारदर्शक कांच में से इक़बाल सब कुछ स्पष्ट देख सकता था. समय बिताने का दूसरा कोई साधन भी उसके पास नहीं था.

इक़बाल का उससे परिचय नहीं था, इसलिए उसने तुरंत अपनी नज़र हटा ली. केबिन के बाहर ग्राहकों की कार में पेट्रोल भरने का काम हमेशा की तरह जारी था. कारें–टैक्सियां आती थीं, थोड़ी देर रुकती थीं और टंकी में पेट्रोल भर जाने पर चली जाती थीं. केबिन के पारदर्शक कांच में से इक़बाल सब कुछ स्पष्ट देख सकता था.

रात नौ बजने पर पंजाबी कहीं से दो बड़ी–बड़ी क्लब सैंडविच ले आया. एक उसने इक़बाल को दी और दूसरी वह ख़ुद चबा गया.

पानी मिलेगा? इक़बाल ने अपनी सैंडविच ख़त्म कर उसके सामने देखा.

वह खड़ा होकर केबिन के बाहर रखे फिल्टर तक गया और इक़बाल के लिए एक गिलास भर लाया. इक़बाल पानी पीकर ख़ाली गिलास के साथ खड़ा हुआ. उसने इक़बाल के साथ खड़े होकर उसके हाथ से गिलास ले लिया. इक़बाल वापस बैठ गया. उसे यह पंजाबी कुछ अजीब–सा लगा. इक़बाल को वह अपनी जगह से हिलने नहीं देना चाहता था. क्या इंस्पेक्टर भेसाड़िया ने उसे ऐसा निर्देश दिया होगा? अभी वह यह भी नहीं जानता था कि भेसाड़िया ने उसे यहां किसलिए बैठा रखा होगा?

रात के दस बजे. उसका धीरज छूट गया, अभी कितनी देर लगेगी? उसने पंजाबी को संबोधित करते हुए पूछा.

जवाब में पंजाबी ने अपने कंधे उचका दिए.

ग्यारह बजे. वह घर आने के लिए खड़ा हो गया, अब मैं जाऊंगा. मेरे ख़याल से साहब कहीं रुक गए होंगे.

पंजाबी ने उसे वापस बैठाते हुए बताया, ऐसा होता तो वे फोन पर इसकी सूचना दे देते.

आपको पूरा भरोसा है? पंजाबी ने इशारे से सिर्फ़ सिर हिलाकर हां कहा. इक़बाल ने अब उसके सामने ग़ौर से देखकर पूछा, क्या नाम है आपका? बाली. इक़बाल ने थोड़ी कल्पना से इतना सोच लिया–बाली जानता है कि इस समय इंसपेक्टर भेसाड़िया कहां होगा? अर्थात बाली अंडरवर्ल्ड का आदमी होना चाहिए या भेदिया या दोनों.

रात के ठीक डेढ़ बजे टेलिफोन की घंटी बज़ी. इक़बाल ने तुरंत हाथ बढ़ाकर रिसीवर उठाया. रात की ख़ामोशी में भेसाड़िया की आवाज़ स्पष्ट सुनाई दी, सो रहा है कि जाग रहा है?

जागता ही बैठा हूं, साहब. उसने कहा, पर आपका आदमी मीठी नींद में पसर गया है.

क्या कहता है? रिसीवर कान के पास से हटाकर इक़बाल ने बाली की नाक के पास धर दिया. कुर्सी पर बैठे–बैठे उसकी आंख लग गई थी. सिर पीछे की ओर लुढ़क गया था. नाक बज रही थी.

अब यक़ीन आया? रिसीवर फिर कान से लगाते हुए इक़बाल ने पूछा. जगा साले को और कह कि तुझे लेकर मेरे पास आए.

कहां, साहब? वह जानता है.

लाइन कट जाने के कारण इक़बाल ने रिसीवर क्रेडिल पर रख दिया. फिर बाली के कंधे झिंझोड़े. वह चौंककर खड़ा हो गया.

हाजी अली से टैक्सी कर बाली उसे वरली–स्थित लोटस थियेटर ले आया. (यह थियेटर अब नहीं रहा.) सड़कें सूनी थीं. आख़िरी शो की भीड़ रात बारह बजे के बाद बिखर गई थी. इस समय सन्नाटा था. थोड़े–थोड़े अंतर पर गैस लाइट के गोले सीमित क्षेत्र में प्रकाश फैला रहे थे. बाक़ी भाग अंधकार में डूबा हुआ था. इंस्पेक्टर भेसाड़िया की जीप थियेटर से थोड़ी दूर पार्क थी. पर वह ख़ुद पास खड़ी एक फिएट की टेक लेकर खड़ा था.

दोनों जब सामने आ गए तो उसने इक़बाल से कहा, यह गाड़ी पसंद है?

इक़बाल ने बॉडी पर हाथ फेरकर देखा. ऊपर थोड़ी धूल जमी थी. नीचे का रंग नीला था. कार भी नई जैसी थी. बढ़िया है, कहते हुए उसने सोचा, क्या इतने घंटे यह कार दिखाने के लिए बैठा रखा था? या फिर यह कार चोरी की है?

अंदर बैठकर देखो. वह दरवाज़ा खोल अंदर गया. और उसकी नज़र सीट पर फैली दो जॉकिटों पर पड़ी. उसने एक जॉकिट की सिलाई पर उंगली दबाकर देखा. वह फौरन समझ गया कि अंदर सोने की बिस्कुटें थीं. एक जॉकिट में सामान्यतः सौ टुकड़े होते हैं. अब उसने चेहरा घुमाकर कार की खिड़की से बाहर देखा. भेसाड़िया मंद–मंद मुस्करा रहा था. इक़बाल ने भी सामने देखकर मुस्कान बिखेरी.

जॉकिट का क्या करना है?

भेसाड़िया ने उसके हाथ में काग़ज़ की एक पर्ची थमा दी, पायधुनी पुलिस स्टेशन के पास दवा की एक दुकान है, वह ध्यान से सुन रहा था, कल सुबह ग्यारह बजे वहां पहुंच जाना. एक जौहरी तेरी राह देखता वहां खड़ा होगा. ये दोनों जॉकिटें तुझे उसे देनी हैं.

इक़बाल की बुद्धि का कंप्यूटर शुरू हो गया. उसने मन–ही–मन हिसाब लगाया. पेट्रोल पंप में साढ़े सात घंटे उसे जो इंतज़ार करना पड़ा था, उसका रहस्य अब उसके सामने खुल गया.

शाम को छह बजे उसे पेट्रोल पंप पर बैठाकर भेसाड़िया किसी तस्कर पर छापा मारने गया होगा. वहां जॉकिटों का जत्था हाथ लगा होगा. उसमें से उसने दो अलग करके बाक़ी को पंचनामे में दर्ज़ किया होगा.

उस जौहरी की पहचान क्या है?

वह तुझे पहचान लेगा.

मुझे कैसे भरोसा होगा कि सही आदमी वही है?

(अगले अंक में जारी)

दुनिया मोबाइल की मुट्ठी में

आर्थिक मंदी ने दुनिया भर में तहलका मचा रखा है. कई उद्योग और बाज़ार इसकी मार से खस्ताहाल हैं, लेकिन मंदी में भी मोबाइल का धंधा चोखा चल रहा है. इतना कि दुनिया में इस साल के अंत तक मोबाइल फोन इस्तेमाल करने वालों की संख्या चार अरब हो जाएगी. अकेले भारत में 2009 के अ ख़िर तक साढ़े 47 करोड़ से ज़्यादा लोग मोबाइल फोन पर बात करते दिखेंगे. बर्लिन में जारी आईटी से जुड़ी एक रिपोर्ट कहती है कि दुनिया भर में मोबाइल की संख्या चार अरब से भी अधिक हो जाने वाली है. यह आंकड़ा तो इस्तेमाल हो रहे नंबरों या कनेक्शनों के आधार पर तैयार किया गया है. फ़िलहाल दुनिया की आबादी छह अरब 80 करोड़ है. ऐसे में चार अरब लोगों के पास मोबाइल होने का मतलब है कि दुनिया के हर पांच में से तीन लोग चलते-फिरते फोन पर बात कर रहे हैं.

भारत में आज 47.5 करोड़ मोबाइल होने का मतलब है कि भारत की आधी आबादी शीघ्र ही मोबाइलधारी होने वाली है. इतनी बड़ी तादाद में मोबाइल के अलावा भारत में लैंड-लाइन और डब्ल्यूएलएल फोनों की भी बड़ी संख्या है.

भारत में आज 47.5 करोड़ मोबाइल होने का मतलब है कि भारत की आधी आबादी शीघ्र ही मोबाइलधारी होने वाली है. इतनी बड़ी तादाद में मोबाइल के अलावा भारत में लैंड-लाइन और डब्ल्यूएलएल फोनों की भी बड़ी संख्या है. ज़ाहिर सी बात है कि भारत टेलीकॉम की दुनिया के सबसे बड़े बाज़ारों में से एक है. आंकड़ों में बयान करें तो भारत का टेलीकॉम बाज़ार इस साल 24 बिलियन डॉलर यानी 1 लाख 14 हज़ार 527 करोड़ का हो गया है. इस आंकड़े को अगर पूरे देश की कमाई के हिसाब से देखें तो यह हमारी जीडीपी का एक फ़ीसदी है. सोचने वाली बात यह है कि शहरी या अमीर आदमी ही नहीं, बाक़ी सब भी धड़ल्ले से मोबाइल का इस्तेमाल कर रहे हैं. आज रिक्शा चलाने वालों के पास भी मोबाइल हैं, और उनके हिसाब से यह उनके लिए बेहद ज़रूरी चीज़ है. इसका इस्तेमाल वे अपने नियमित ग्राहकों से संपर्क बनाने में कर रहे हैं. सवाल यह है कि जहां एक तिहाई आबादी (सरकारी आंकड़ों में) ग़रीबी रेखा से नीचे है, वहीं हर दूसरे आदमी के पास फोन होने की बात को कैसे समझा जा सकता है? भारत, ब्राजील और चीन जैसे देशों में मोबाइलों की संख्या अधिक तेज़ी से बढ़ी है. इससे साफ होता है कि मोबाइल फोन इस्तेमाल करने वालों की संख्या सबसे ज़्यादा उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं और विकासशील देशों में बढ़ रही है. सबसे तेज़ बढ़ोतरी तो भारत में ही देखने को मिली है. भारत में इस साल के अंत तक मोबाइल फोन इस्तेमाल करने वाले लोगों का आंकड़ा 47.5 करोड़ होने की उम्मीद है. ब्राज़ील में 14 प्रतिशत वृद्धि की उम्मीद है जबकि चीन में मोबाइल फोन रखने वालों की तादाद 12 फ़ीसदी बढ़कर 68.4 करोड़ होने का अनुमान है. विकसित देशों में इस वृद्धि की रफ़्तार सबसे कम है. वहां मोबाइल बाज़ार में ज़्यादा गुंजाइश नहीं है, क्योंकि लोग पहले से ही इसका फ़ायदा उठा रहे हैं. यूरोपीय संघ में आबादी से ज़्यादा मोबाइल फ़ोन कनेक्शन हैं, इसलिए कंपनियां अब यूएमटीएस टेक्नॉलजी के ज़रिए मोबाइल इंटरनेट फेसिलिटी पर ध्यान दे रही हैं. इसके ज़रिए सबसे तेज़ मोबाइल सिग्नल मिलते हैं. यूरोप में यूएमटीएस टेक्नोलॉजी में 36 प्रतिशत विस्तार की उम्मीद है और इस तरह इसे इस्तेमाल करने वालों की संख्या 17.2 करोड़ हो सकती है. अमेरिका में 74 प्रतिशत इज़ाफ़े का अनुमान है जिसके बाद यह तकनीक 10.8 करोड़ लोगों तक पहुंच सकेगी.

भारत जैसे देशों में अभी भी मोबाइल का तंत्र फैल ही रहा है. हालांकि अब इसका इस्तेमाल एक स्टेटस सिंबल की तरह नहीं रहा है, अब इसे एक बेहद ज़रूरी और काम की चीज़ मान लिया गया है. भारत में इसके फैलाव के लिए बड़ी संभावनाएं हैं. तभी मोबाइल कंपनियां भी बाज़ार के विस्तार में जुटी पड़ी हैं और उन्हें अभूतपूर्व सफलता भी मिल रही है. भारत में मोबाइल का फैलाव आख़िरी आदमी तक होने लगा है.

भारत में मोबाइल तंत्र का विस्तार 32 फ़ीसदी की गति से हो रहा है. यह अजीब बात है क्योंकि अभी हाल में ही जारी हुई, सेनगुप्ता कमीशन की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में क़रीब 70 फ़ीसदी लोग 20 रुपये रोज़ाना पर गुज़ारा कर रहे हैं. वैसे सोचने वाली बात यह भी है कि जिस तरह से मोबाइल का बाज़ार फैल रहा है, कहीं ऐसा तो नहीं अगले कुछ सालों में मोबाइल को रोटी, कपड़े और मकान के साथ जगह मिल जाएगी! ज़ाहिर है, इससे कुछ चौंकाने वाले नए समीकरण और मायने अवश्य पैदा होंगे.

सैमसंग का स्लिम एलईडी टीवी

टीवी आज हर घर के लिए अनिवार्य चीज़ हो गई है. इसलिए कंपनियां नए रंग-रूप में नित नया प्रोडक्ट लेकर बाज़ार में आ रही हैं. प्रतिस्पर्धा और उपभोक्ताओं की बदलती पंसद को देखते हुए कभी भारी-भरकम दिखने वाला टीवी सेट दिन प्रति दिन स्लीम होता जा रहा है. इसी को ध्यान में रखते हुए सैमसंग ने फिर से एलईडी श्रृंखला में एक ऐसे ही स्लीम टीवी को भारतीय बाज़ार में उतारा है. इसकी सबसे बड़ी ख़ासियत स्लीम होने के बावजूद इसके फीचर्स में कोई कमी न होना है. भारत में एक माह पहले एलईडी (लाइट इमिटिंग डायोड) टीवी की श्रृंखला में 6000 और 7000 मॉडल लांच करने के बाद सैमसंग ने एक नया मॉडल 8000 को लांच करने की घोषणा की है. सैमसंग ने 32 इंच वाले स्क्रीन को 6000 सीरीज में और 55 इंच वाले स्क्रीन को 7000 सीरीज में शामिल किया है. इसके अलावा यह एलसीडी से काफी स्लीम है. इतना ही नहीं, एलईडी टीवी को बहुत कम ऊर्जा की ज़रूरत होती है और इसमें भी उतने ही फीचर्स हैं जितने अन्य किसी टीवी में होते हैं. लेकिन इसकी प्राइस रेंज अधिक है. अच्छे कलर और स्पष्ट दिखाई देने के लिए इसमें नई तरह का कॉन्ट्रास्ट लगा हुआ है. इस टीवी की मोटाई सिर्फ़ 29 एमएम है. इस नई रेंज के एलईडी में सबसे मज़ेदार फीचर्स यूएसबी 2.0 मूवी फीचर है. इसके ज़रिए आप कैमकोडर से वीडियो और फोटो आसानी से देख सकते हैं. इतना ही नहीं, मीडिया प्लेयर से म्यूजिक प्ले भी कर सकते हैं और पोर्टेबल ड्राइव से आप मल्टीमीडिया फाइल्स तक भी पहुंच सकते हैं. 7000 और 8000 सीरीज में डीएलएनए वायरलेस फीचर्स के द्धारा यूजर्स बिना तार और केबल के पीसी का कंटेंट देख सकते हैं. इसमें लाइब्रेरी फ्लैश इन बिल्ट है. भारतीय बाज़ार में एलईडी सीरीज के 6000, 7000 और 8000 मॉडल व स्क्रीन साइज 32, 40, 46 और 55 इंच में उपलब्ध हैं. इसकी क़ीमत 69,900 रुपये से लेकर 3,00,000 रुपये तक है.

अब नहीं सताएगी लो-बैटरी

किसी से कभी भी और कहीं से भी बात कर लेने के कारण मोबाइल तो बड़ी सुविधाजनक चीज़ लगती है, लेकिन जब उसे चार्ज करने की बात आती है, तो फिर बड़ी कोफ्त होती है. आजकल तो स्मार्टफोन्स का ज़माना है, फोन में कई फीचर्स आ गए हैं. जितने ज़्यादा फीचर्स होते हैं, उतनी ही ज़्यादा बैटरी की खपत भी होती है. मोबाइल इस्तेमाल करने वालों के लिए बैटरी और टेक्नोलॉजी का तालमेल बैठा पाना बड़ी परेशानी वाला काम होता है. ऐसे में सूरज की रोशनी से चार्ज करने वाले सोलर चार्जर्स की ख़बर शायद उन्हें राहत दे. मोबाइलइंडियाहब डॉट कॉम पर आई एक ख़बर के मुताबिक जल्द ही ऐसे कई चार्जर्स बाज़ार में होंगे. सोलर चार्जर्स यात्रा करने वालों या घर से बाहर काम करने वालों के लिए बेहद उपयोगी है और इसे इस्तेमाल करना भी आसान है. फोन को होल्डर के आकार के चार्जर में डालना होता है और फिर इंतज़ार करना होता है कि सूरज की रोशनी उस पर पड़े. इस सोलर चार्जर को *पावसेल* का नाम दिया गया है और इसे सरे (इंग्लैंड) में स्थित फर्म मोशनटच ने बनाया है. पावसेल में एक सोलर पैनल लगाया गया है जो रोशनी के इस्तोमाल से चार्ज होता है. यह फोन को चार्ज्ड रखता है और कॉल के दौरान लो-बैटरी की समस्या से बचाता है. हालांकि फ़िलहाल इसे एप्पल के आईफोन और कुछ ब्लैकबेरी सेट्स के लिए डिज़ाइन किया गया है. पावसेल को बनाने वाले मानते हैं कि उनका यह प्रोडक्ट मोबाइल टेक्नोलॉजी की दिशा बदलने में पहला क़दम हो सकता है. प्लग-इन यानी बिजली की मदद से चलने वाले चार्जरों की जगह इसके आने से हमारे वातावरण पर भी दबाव कम होगा. इससे आपके फोन के साथ रहने से आपकी लो-बैटरी की समस्या हल हो जाएगी. उम्मीद है कि कंपनी जल्द ही पावसेल को दूसरे मोबाइलों में काम आने लायक़ भी बना सकेगी. कंपनी ने उम्मीद जताई है कि उनका पावसेल कई मोबाइल यूजर्स को उनकी सबसे बड़ी परेशानी से निज़ात दिला सकेगा.

पर्यावरण के अनुकूल आवासीय परिसर

हरेक की इच्छा होती है-एक घर हो सपनों का. लेकिन इस महंगाई के दौर में हरेक की इच्छा पूरी नहीं हो पाती. लेकिन दिल छोटा मत कीजिए. आपके सपनों को पूरा करने लिए लोटस बुलवर्ड ने ग्रीन रेसिडेंसियल इस्टेट प्रोजेक्ट शुरू करने की घोषणा की है, जो हर मायने में आपके मानदंडों पर खरा उतरेगा. यह कम क़ीमत, स्वस्थ माहौल के साथ ही पर्यावरण के प्रति आपकी संवेदनशीलता के उद्देश्य को भी पूरा करता है. यह इसके नाम से भी पता चल जाता है. ग्रीन बिल्डिंग के क्षेत्र में भारत और नोएडा में व्यावसायिक प्रतिष्ठानों एवं आईटी ऑफिस निर्माण क्षेत्र की अग्रणी कंपनी 3सी ने लोटस बुलवर्ड के नाम से भारत की सबसे ग्रीन रेसिडेंसियल इस्टेट प्रोजेक्ट शुरू करने की घोषणा की है. 40 एकड़ भूमि पर तैयार होने वाले इस प्रोजेक्ट की कुल लागत 1550 करोड़ रुपये है. पहले चरण में वह 30 एकड़ ज़मीन पर निर्माण के लिए रेड फोर्ट कैपिटल (एक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय रियल इस्टेट प्राइवेट इक्विटी फंड) के साथ निवेश करेगी. लोटस बुलवर्ड, नोएडा सेक्टर-100 में स्थित होगा. यह ग्रीन रेसिडेंसियल इस्टेट नोएडा के प्रमुख स्थानों जैसे डीएनडी, टोल ब्रिज, सेक्टर-18 के बाज़ार, प्रस्तावित मेट्रो स्टेशन, स्कूल और हॉस्पिटल आदि जगहों से यातायात के सभी साधनों से जुड़ा है. इस प्रोजेक्ट की घोषणा करते हुए 3सी कंपनी के निदेशक विदुर भारद्वाज ने कहा कि लोटस बुलवर्ड द्वारा एकीकृत ग्रीन डेवलेपर के रूप में एक ऐसा भवन का निर्माण करना है, जिसकी कार्यप्रणाली से लेकर इस्तेमाल तक भरोसेमंद साबित हो. 3सी कंपनी ने वातावरण को हरियाली से युक्त रखने में एक और प्रमुख कड़ी जोड़ी है. 3सी ग्रुप के अंतर्गत यह एशिया की एकमात्र ऐसी टीम है, जिसने प्लेटिनम आधारित लीड सर्टिफाइड दो ग्रीन बिल्डिंग्स तैयार की है, जो गुड़गांव की विप्रो टेक्नोलॉजी और नोएडा स्थित पटनी कैंपस है.

लोटस बुलवर्ड को कई स्तर पर तैयार किया जाएगा. इसमें दो और तीन बेडरूम वाले फ्लैट होंगे. इसका कुल क्षेत्रफल 987 वर्ग फुट से लेकर 1820 वर्ग फुट तक होगा. इसकी शुरुआती क़ीमत 2825 प्रति वर्ग फुट होगी.

दिल्ली में रीयल एस्टेट कंपनी ईडब्ल्यूडीपीएल ने देश भर में अपने नए मॉल्स लाने की घोषणा की.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

वाटर हीटर के क्षेत्र में हायर की एंट्री

भारतीय बाज़ार चाइनीज़ उत्पादों से पटा हुआ है. चाहे बात मोबाइल फोन की हो या फिर किसी अन्य उत्पाद की. लोग भी चीनी सामान ख़रीदने में काफी दिलचस्पी दिखाते हैं, जिससे उसके ग्राहकों की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ रही है. हायर के उत्पाद तो ख़ास तौर पर लोकप्रिय हो रहे हैं. इससे उत्साहित होकर हायर ने एक और उत्पाद को भारतीय बाज़ार में उतारा है. उसने भारत में ऊर्जा बचाने वाले अपने नए उत्पाद के रूप में वाटर हीटर को लांच किया है. इसे भारतीय उपभोक्ता के अनुसार डिज़ाइन किया गया है. भारत में हेयर एप्लीएंसेज के डायरेक्टर और सीईओ प्रणय धभाई ने कहा कि स्पा ब्रांड वाटर हीटर का डिज़ाइन शोध करके तैयार किया गया है. उन्होंने कहा कि बाज़ार में वैसे तो कई रेंज के वाटर हीटर उपलब्ध हैं, लेकिन इसे भारतीय उपभोक्ताओं की आवश्यकता को देखते हुए डिज़ाइन किया गया है. उन्होंने कहा कि चीन में हमने 75 फ़ीसदी बाज़ार पर कब्जा कर लिया है, जो विश्व के सबसे बड़े उपभोक्ता बाजार में से एक है. इससे हम बहुत ख़ुश हैं.

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

उनके मुताबिक, स्पा ब्रांड की यह श्रृंखला 10-15 लीटर में देश के लगभग सभी बड़े स्टोर्स पर मिलेंगे. इसकी प्राइस रेंज 6,500 से लेकर 10,260 तक है. इसे लांच करने के पीछे कंपनी का मुख्य उद्देश्य समकालीन डिज़ाइन और कटिंग एज टेक्नोलॉजी के द्वारा भारतीय उपभोक्ताओं की सुविधा बढ़ाना है. हम अपने ग्राहकों क्वालिटी, कॉस्ट और डिलिवरी के मामले में अच्छी सुविधा देना चाहते हैं.

वेस्ट इंडीज का वजूद ख़तरे में

क्रिकेट जगत में इन दिनों भयंकर खलबली मची हुई है. ट्वेंटी-20 में इस साल का विश्व कप जीतने वाली पाकिस्तानी टीम को श्रीलंका में न सिर्फ़ अपमानजनक हार का सामना करना पड़ा, बल्कि उस पर मैच फिक्सिंग के भी आरोप लगे. वाडा मामले में भारतीय क्रिकेटरों और बीसी-सीआई के रुख़ की चौतरफा निंदा हो रही है. उधर, एशेज में इंग्लैंड ने ऑस्ट्रेलिया के पसीने छुड़ा रखे हैं. इन सबके बीच, कैरीबियाई क्रिकेट में हुए बड़े उलटफेर पर लोगों का ख़ास ध्यान ही नहीं गया. बांग्लादेश ने टेस्ट और वन-डे में वेस्टइंडीज़ की जैसी रगड़ाई की, वह ऐतिहासिक है. वन-डे सीरीज जीतने से पहले बांग्लादेश ने दो टेस्ट मैचों की सीरीज भी 2-0 से जीत ली. कैरीबियाई क्रिकेट की ऐसी दुर्गति पहले कभी देखने को नहीं मिली. तब भी नहीं, उसके स्टार खिलाड़ी कैरी पैकर के साथ करार कर सिर्फ़ उसके लिए खेलने चले गए थे. बांग्लादेश के साथ हालिया सीरीज में वेस्ट इंडीज का जैसा प्रदर्शन रहा, उसे देख कर लोग हैरान हैं. एक-दूसरे से सवाल किए जा रहे हैं कि कैरीबियाई क्रिकेट को यह क्या हो गया है?

यह ठीक है कि सीरीज से ऐन पहले वेस्ट इंडीज क्रिकेट बोर्ड के साथ खिलाड़ियों का कांट्रैक्ट विवाद शुरू हो गया. लगभग सभी सीनियर खिलाड़ियों ने बोर्ड को बेहतर सेवा शर्तों और वेतन की याद दिलाई. बोर्ड ने उनकी मांग पर गंभीरता दिखाने के बजाय धमकाना शुरू कर दिया, जिससे बात बिगड़ गई. कप्तान क्रिस गेल के नेतृत्व में सीनियर खिलाड़ियों ने विद्रोह कर दिया. बदले में बोर्ड ने टीम से ही उनकी छुट्टी कर दी. इतना ही नहीं, बोर्ड ने आनन-फानन में नए खिलाड़ियों को लेकर एकदम नई टीम खड़ी कर दी. इसी नई टीम ने बांग्लादेश के साथ दो टेस्टों की सीरीज खेली. नतीजा मिला-दोनों टेस्ट मैचों में करारी हार. नुक़सान हुआ- वेस्ट इंडीज क्रिकेट को. सीनियर खिलाड़ियों के न खेलने से दर्शक भी मैदान से दूर हो गए. मैदान अमूमन ख़ाली पड़े रहे. यक़ीनन यह वेस्ट इंडीज क्रिकेट बोर्ड के लिए ख़तरे की घंटी है. इसलिए कि सीनियर खिलाड़ियों के बाद अगर दर्शक भी दूर हो गए, तो बचे-खुचे प्रायोजक भी घर बैठ जाएंगे.

ख़तरे की घंटी इसलिए भी कि वेस्ट इंडीज के युवा अब दूसरे खेलों की ओर आकर्षित होने लगे हैं. वे फुटबॉल और एथलेटिक्स में करियर बनाने लगे हैं. त्रिनिदाद एंड टोबैगो में यह प्रवृत्ति ख़ास कर देखी जा रही है. वैसे दूसरे कैरीबियाई द्वीपों में भी बदलाव की हवा चल पड़ी है. जमैका आदि में भी बेसबॉल और बास्केटबॉल काफी लोकप्रिय खेल बन चुके हैं. उनमें पैसा भी भरपूर मिल रहा है. दूसरे, वहां के खिलाड़ी बड़ी तादाद में अमेरिकी लीग में जगह बना रहे हैं.

वेस्ट इंडीज क्रिकेट बोर्ड पर यह आरोप हमेशा से लगता रहा है कि समय के साथ ख़ुद को बदलने में वह विफल रहा है. उसके पास न तो युवाओं के लिए योजनाएं रह गई हैं और न ही दर्शकों को दोबारा क्रिकेट की ओर खींचने के लिए रणनीति. बोर्ड को पुराने ढर्रे पर ही आज भी परंपरागत अंदाज़ में चलाया जा रहा है. खिलाड़ियों के एक बड़े वर्ग का मानना है कि बोर्ड उनकी कमाई पर मलाई काट रहा है. दूसरे, बोर्ड के अधिकारियों का रवैया कतई पेशेवर नहीं है. उनका व्यवहार काफी कठोर, अड़ियल और अहंकारी होता है. इसे इससे समझा जा सकता है कि बोर्ड ने पिछले दिनों बाग़ी क्रिकेटरों के साथ बैठ कर सर्वमान्य हल निकालने की कोशिश ही नहीं की. लिहाज़ा, गुयाना के राष्ट्रपति भरत जगदेव को बीच-बचाव में उतरना पड़ा. उनकी पहल से ही मध्यस्थ की नियुक्ति हुई, जिसके बाद बाग़ी क्रिकेटरों ने अपनी हड़ताल ख़त्म राष्ट्रीय टीम के लिए उपलब्ध होने की घोषणा कर दी.

दरअसल, वेस्ट इंडीज के खिलाड़ी लंबे अरसे से यह कहते रहे हैं कि दूसरे देशों के क्रिकेटरों की तुलना में उनके वेतन काफी कम हैं. इसकी भरपाई में वे स्पांसरशिप डील में ख़ुद का हिस्सा चाहते हैं. वैसे बोर्ड के साथ क्रिकेटरों का यह विवाद 2004 से चल रहा है. तब टीम के कप्तान ब्रायन लारा होते थे. 2005 में तो यह विवाद इतना बढ़ गया कि बोर्ड ने आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका का दौरा करने वाली अपनी टीम से सात मुख्य खिलाड़ियों की ही छुट्टी कर दी. हालांकि बोर्ड ने पिछले साल नया कांट्रैक्ट तैयार किया था, लेकिन खिलाड़ियों ने इसे नकार दिया.

ग़ौरतलब है कि साठ से अस्सी के दशकों के बीच वेस्ट इंडीज में प्रतिभाओं की भरमार होती थी. रोहन कन्हाई, गैरी सोबर्स, वेसली हॉल, क्लाइव लॉयड, विवियन रिचर्ड्स, माइकल होल्डिंग, एंडी रॉबर्ट्स, गार्नर और मार्शल आदि क्रिकेट खेलने वाले सभी देशों में हीरो की तरह पूजे जाते थे. महान ब्रायन लारा इस कड़ी के आख़िरी नाम थे. इसके बाद कुछ हद तक क्रिस गेल को छोड़ कोई बड़ा नाम नहीं उभर पा रहा है.

कहना न होगा कि लगभग सौ सालों से कैरीबियाई सागर में बसे इन द्वीपों को क्रिकेट ने ही एकसूत्र में बांध रखा है. कभी ये द्वीप ब्रिटेन के उपनिवेश थे. आज़ादी मिलने के बाद इन द्वीपों की पहचान अलग-अलग देशों के रूप में हो गई है. सबकी अपनी अलग-अलग सरकारें हैं. यहां तक की क्रिकेट को छोड़ दें तो बाक़ी सभी खेलों में इन द्वीपों की अपनी-अपनी राष्ट्रीय टीमें हैं और वे ओलंपिक से लेकर वर्ल्ड चैंपियनशिप तक में अलग-अलग ही भाग लेती हैं. लेकिन, क्रिकेट का यह बंधन अब ढीला पड़ने लगा है. कैरीबियाई देशों को अब वेस्ट इंडीज क्रिकेट बोर्ड की कार्यशैली से परेशानी होने लगी है. त्रिनिदाद एंड टोबैगो ने तो कह भी दिया है कि वह अब अपनी स्वतंत्र टीम बनाने पर सोच रहा है. अगर ऐसा हुआ तो वेस्ट इंडीज क्रिकेट का शानदार और सुनहरा अतीत बस इतिहास बन कर रह जाएगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com

फिक्सिंग के साए से बच नहीं पा रहा पाकिस्तानी क्रिकेट

पाकिस्तानी क्रिकेट में कुछ तो है कि आप चाहे कितनी भी कोशिश कर लें, उसे नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते. पाकिस्तान ने क्रिकेट की दुनिया को बहुत दिया है. कुछ अच्छा तो, बुरा भी कम नहीं दिया है. एक विवाद ख़त्म होने से पहले दूसरा सामने आ जाता है. अब क्रिकेट की दुनिया में मैच फिक्सिंग का जिन्न फिर से बाहर निकल आया है और इसमें कोई ताज़्ज़ुब की बात नहीं है कि जिस बोतल से यह जिन्न निकला है, वह पाकिस्तानी है. पाकिस्तानी क्रिकेट और मैच-फिक्सिंग का नाता बहुत पुराना है. इस बार जो तूफान खड़ा हुआ है उसकी चपेट में पूरा बोर्ड और कई पूर्व पाकिस्तानी क्रिकेटर आने वाले हैं. दरअसल, एक अज्ञात व्यक्ति ने एक टेप यूट्यूब पर डाला है, जिसमें एक पूर्व पाकिस्तानी खिलाड़ी और चयन समिति के सदस्य मो. इलियास पीसीबी के अधिकारी अल्ताफ हुसैन से इंडियन प्रीमीयर लीग (आईसीएल) के पहले संस्करण में मैच फिक्सिंग के बारे में बातें कर रहे हैं. वह अल्ताफ से कह रहे हैं कि पाकिस्तानी खिलाड़ियों ने मैच फिक्स किए थे और बता रहे हैं कि एक पाकिस्तानी खिलाड़ी किस तरह शराब पीकर खेलने जाया करता था. हालांकि इलियास और अल्ताफ दोनों इस टेप में अपनी आवाज़ होने से इंकार कर रहे हैं. इलियास के दामाद इमरान फरहत भी इस आईसीएल में खेले थे और इलियास का कहना है कि वह अपने दामाद का करियर क्यों बर्बाद करेंगे. हो सकता है, इलियास और अल्ताफ सच कह रहे हों और यह कोई शरारत हो. लेकिन क्रिकेट की भाषा में कहें तो उन्हें यहां *बेनिफिट ऑफ डाउट* नहीं मिलेगा. दरअसल पाकिस्तानी क्रिकेट की हालत भेड़िया आया वाली कहानी की तरह है. अगर वहां कोई सच भी बोले तो कोई यक़ीन नहीं करेगा.

पाकिस्तानी क्रिकेट में यह नया बवाल चयन समिति के पूर्व अध्यक्ष अब्दुल क़ादिर के उस बयान के चंद दिनों बाद ही आया है, जिसमें उन्होंने आरोप लगाया था कि पाकिस्तानी खिलाड़ियों ने अभी-अभी ख़त्म हुई श्रीलंकाई सीरीज़ में भी मैच फिक्सिंग की थी. उन्होंने तो इसमें भारतीय सट्टेबाज़ों के शामिल होने की बात भी कही थी. अब्दुल क़ादिर पाकिस्तानी क्रिकेट के दिग्गजों में रहे हैं, उनकी ओर से यह बयान आना बहुत ख़तरनाक है. वैसे भी पाकिस्तानी टीम इस श्रीलंकाई दौरे पर टेस्ट मैचों में बुरी तरह से हारी थी और वन-डे में भी सीरीज गंवाने के बाद आख़िरी मैचों में बस लाज बचाई थी. ग़ौरतलब है कि यह वही टीम थी जिसने चंद महीने पहले टी-20 का विश्व कप ख़िताब जीता था. ऐसे में क़ादिर के आरोपों में दम लगता है.

पाकिस्तान के कप्तान यूनिस ख़ान कहते हैं कि अब क्रिकेट में इतना पैसा है तो आख़िर मैच फिक्स करने की क्या ज़रूरत है. अब यह यूनिस को कौन समझाए कि उनके यहां मैच फिक्स करने की पुरानी परंपरा रही है. बड़े-बड़े खिलाड़ी मैच फिक्सिंग के आरोप में टीम से अंदर-बाहर होते रहे हैं. ऐसे में अगर मैच फिक्सिंग हुई है तो इसमें कोई बड़ा आश्चर्य न होगा. अगर ये आरोप ग़लत हैं तो फिर सवाल यह है कि क़ादिर जैसा व्यक्ति ऐसी बातें क्यों कर रहा है. सच कुछ भी हो, इतना तो तय है कि पाकिस्तानी क्रिकेट में सबकुछ ठीक नहीं है. हालांकि सबसे बड़ी समस्या कुछ और ही है. लगता है पाकिस्तानी खिलाड़ियों और अधिकारियों ने इस ख़राब हालात को ही अपनी नियति मान लिया है और वहां खेल ऐसे ही होना है. हां दुख की बात यह है कि इस नियति के छींटे गाहे-बगाहे उसके पड़ोसियों और पूरे एशियाई क्रिकेट पर पड़ते रहते हैं. भारत को इससे अपना दामन बचाने की ज़रूरत है.

वाडा माने बिना एशियाड में नहीं खेल पाएंगे भारतीय क्रिकेटर

वाडा विवाद अगर जल्द नहीं सुलझा, तो क्रिकेटरों से पहले भारत को नुक़सान हो जाएगा. जी हां, ऐसे में एशियाई खेलों में भारत अपनी क्रिकेट टीम नहीं भेज पाएगा. ग़ौरतलब है कि अगले साल चीन में होने वाले एशियाड में क्रिकेट को पहली बार शामिल किया गया है. और, भारतीय क्रिकेट टीम के मौजूदा खेल को देखते हुए एक स्वर्ण पदक की तो उम्मीद की ही जा सकती है. लेकिन डोपिंग संबंधी वाडा नियमों को नहीं मानने से भारतीय क्रिकेटरों का एशियाड में खेलना नामुमकिन हो जाएगा. इसलिए कि एशियाई खेलों में शामिल होने के लिए वाडा संहिता पर हस्ताक्षर अनिवार्य है.

इसलिए वाडा को लेकर चल रहे विवाद से भारतीय भारतीय ओलंपिक संघ (आईओए) भी चिंतित है. आईओके के महासचिव रणधीर सिंह के मुताबिक, वाडा संहिता पर बीसीसीआई के साथ चल रहा गतिरोध दूर नहीं हुआ तो भारतीय क्रिकेटरों का चीन में खेलना खटाई में पड़ सकता है. नियमों के मुताबिक, अगर आप वाडा संहिता का पालन नहीं करते तो एशियाई खेलों में भाग नहीं ले सकते. ग़ौरतलब है कि भारत के क्रिकेटरों ने अपने ठहरने से संबंधित जानकारी (वेयरअबाउट) का ख़ुलासा करने वाले मुद्दे पर वाडा संहिता पर दस्तख़त करने से इंकार कर दिया है. इस मुद्दे को सुरक्षा के लिहाज़ से गंभीर मानते हुए बीसीसीआई भी अपने खिलाड़ियों के साथ खड़ा हो गया है.

इस बीच, हरभजन सिंह ने फिर कहा है कि वह इस मुद्दे पर अडिग हैं. अगर इस सिलसिले में नियमों में संशोधन नहीं किए गए तो वह वाडा संहिता पर दस्तख़त कतई नहीं करेंगे. बहरहाल, आईओए महासचिव रणधीर सिंह को उम्मीद है कि भारतीय क्रिकेटरों का मामला ज़्यादा लंबा नहीं खिंचेगा और समय के रहते यह मसला ज़रूर सुलझ जाएगा. इसलिए भी कि एशियाई खेलों में अभी भी एक साल और पांच माह का समय बाक़ी है. वैसे उन्हें यह उम्मीद नहीं है कि वाडा संहिता का वेयरअबाउट नियम हटा दिया जाएगा.

पिछले दरवाज़े से भी चैंपियंस ट्रॉफी में नहीं जा पाएगा भारत

इसमें कोई शक़ नहीं कि भातीय हॉकी की हालत ख़राब है. इतनी ख़राब कि अब उसके लिए फिर से ऊपर उठना मुश्किल ही लगता है. दिक़्क़त तो यह भी है कि जब भी वह ऊपर उठने की कोशिश करती है, तब उठना तो दूर, सोचने से पहले ही उसे एक धक्का और लग जाता है और वह दोबारा औंधे मुंह गिर जाती है. अब चैंपियंस ट्रॉफी हॉकी को ही लें. भारतीय हॉकी टीम इस टूर्नामेंट के लिए क्वालीफाई करने में असफल रही थी. फिर अंतरराष्ट्रीय हॉकी महासंघ के भारत की टीम को इस टूर्नामेंट के लिए वाइल्ड कार्ड देने की बात से हॉकी टीम और हॉकी प्रेमियों की उम्मीद फिर जगी थी. उम्मीद थी कि भारत की टीम इस टूर्नामेंट में बड़ी टीमों के बीच खेलकर अपनी मौजूदगी फिर दर्ज़ कराने में सफल रहेगी. चैंपियंस ट्रॉफी हॉकी जगत की छह बड़ी टीमों के बीच का मुक़ाबला है. ऐसे में अंतरराष्ट्रीय हॉकी महासंघ (एफआईएच) भारत और पाकिस्तान को इस ट्रॉफी में वाइल्ड कार्ड प्रवेश देकर उन्हें उनकी खोई गरिमा पाने का मौक़ा देना चाहती थी. लेकिन लगता है कि अब ऐसा नहीं हो सकेगा. न्यूजीलैंड, बेल्ज़ियम, अर्जेंटीना और कनाडा ने एफआईएच से कहा है कि उनकी रैंकिंग भारत (जो कि 12वें स्थान पर है) से ज़्यादा अच्छी है, ऐसे में वाइल्ड कार्ड के वे बेहतर हक़दार हैं. अगर एफआईएच ने इसका कोई हल नहीं निकाला तो भारत को बाहर ही रहना पड़ेगा. भारत के लिए जले पर नमक छिड़कने वाली बात यह है कि पाकिस्तान को ऐसी चिंता नहीं है. वह अभी विश्व रैंकिंग में छठे स्थान पर है और अगर वह इस पर बना रहे तो उसे सीधा प्रवेश भी मिल सकता है. अब एफआईएच की कोशिश है कि वह भारत को किसी तरह चैंपियंस ट्रॉफी में जगह दिला सके, क्योंकि भारत उसके लिए बहुत बड़ा बाज़ार है. लेकिन इस मामले में भारत की ओर से पहल ज़रूरी है. यह तो जगज़ाहिर है कि भारत में हॉकी का बाज़ार कितना भी बड़ा हो जाए, क्रिकेट से पीछे ही है. अभी पिछले दिनों ही आईपीएल के कारण विश्व कप हॉकी की तारीखें बदलनी पड़ीं. साफ है कि अंतरराष्ट्रीय हॉकी को भारतीय दर्शकों और खेल की ज़रूरत है. ज़रूरत तो यह भी है कि अंतरराष्ट्रीय हॉकी इस ज़रूरत का फ़ायदा हॉकी के पुरोधा भारतीय हॉकी की हालत सुधाने के लिए करें. क्रिकेट को गालियां तो दें, लेकिन थोड़ी मैनेजरी भी उनसे सीख लें, वरना चैंपियंस बनना तो दूर चैंपियंस ट्राफी में खेलना भी सपना ही रहा जाएगा.

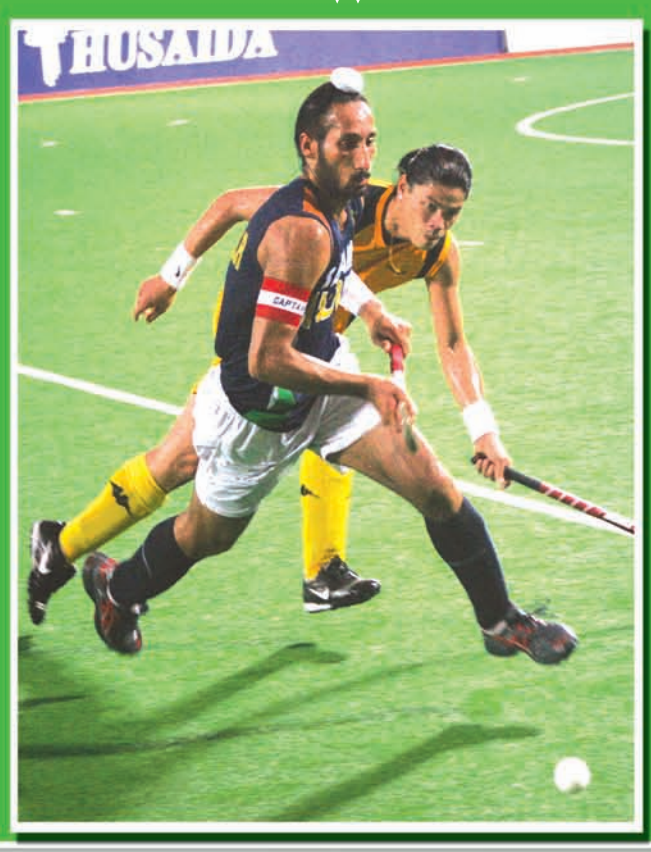

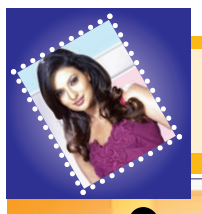

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

अमीषा का भूल सुधार

पांच साल का अंतराल काफी होता है. भाई-बहन के रिश्ते के बीच तो यह किसी युग समान लगता है. इस तथ्य को अमीषा पटेल जिस शिद्दत से आज महसूस कर रही हैं, उतनी ही शिद्दत से अस्मित पटेल भी महसूस रहे हैं. यूं तो राखी का पर्व इन पांच सालों में चार बार और आया था, लेकिन इस बार का अनोखा रहा. जी हां, पांच साल बाद अमीषा ने अपने भाई अस्मित को राखी बांधी है. दोनों में बंद हुई बातचीत भी शुरू हो गई है. रिश्ते को लेकर मन में जितनी भी गांठें थीं, वे सब खुल गई हैं. तभी तो पिछले दिनों भाई की नई फिल्म-*टॉस*-विशेष रूप से देखने गईं. अब उम्मीद की जाती है कि अमीषा के माता-पिता भी सभी गिरह खोल कर बेटी को फिर से अपना लेंगे. ग़ौरतलब है कि विक्रम भट्ट के चक्कर में अमीषा अपना घर-परिवार सब छोड़ आई थीं. लेकिन जब विक्रम भट्ट ने आदतन उन्हें भी छोड़ दिया, तब उन्हें अपनी ग़लती का अहसास हुआ. लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी. क़ानूनी कार्यवाहियां शुरू हो जाने के बाद तो रिश्तों में और कड़वाहट भर गई थी. लेकिन, कहते हैं न कि समय सब ठीक कर देता है. सो, अमीषा के लिए समय ने लगता है कि नई करवट ले ली है. इसका फ़ायदा उन्हें अपने रिश्ते से लेकर करियर तक में उठाना चाहिए.

नए शो में दिखेंगे *बिग बॉस* वाले

छोटे पर्दे से बड़े पर्दे होते हुए अनुराग बसु फिर पुरानी जगह लौट आए हैं. टेलीविजन के लिए सीरियल बनाते-बनाते फिल्म निर्माता बन गए अनुराग एक रियलिटी शो लेकर आ रहे हैं. *लाइफ इन ए मेट्रो, गैंगस्टर* और *मर्डर* जैसी फिल्म बनाने वाले अनुराग की टीवी पर वापसी *सहारा-वन* चैनल पर होगी. शो का नाम है-*यूनिट-9*. बताया जा रहा है कि इस रियलिटी शो की शूटिंग महाराष्ट्र के गोरेगांव में शुरू भी हो चुकी है. इस शो के लिए प्रतियोगी उन्होंने चुन-चुन कर उठाए हैं. वैसे कोई यह भी कह सकता है कि उन्होंने *बिग बॉस* की टीम को ही उठा लिया है. एक नज़र ज़रा उस सूची पर डाल लें, जो *यूनिट-9* के प्रतिभागियों की है. इसमें *बिग बॉस-2* में रहे राजा चौधरी, मोनिका बेदी और पायल रोहतगी हैं, तो *बिग बॉस* के पहले सीजन में भाग ले चुके आर्यन वैद और कश्मीरा शाह हैं. यह देखना वाकई दिलचस्प होगा कि बिग बॉस के घर में अलग-अलग तरह के कारनामों की वजह से चर्चित रहे ये कलाकार *यूनिट 9* में क्या गुल खिलाएंगे.

जीवन साथी का छूटा साथ

अगर चैनल का साथ न मिले तो *जीवन साथी* क्या, कोई भी सीरियल नहीं चल सकता. ताज़ा उदाहरण *कलर्स* चैनल का है. *कलर्स* पर रात नौ बजे आने वाले *जीवन साथी* के दिन पूरे हो गए हैं. हालांकि उसे 120 एपिसोड बनाने की हरी झंडी मिली थी, जिसके हिसाब से इसे फरवरी 2010 तक चलना चाहिए था. लेकिन दर्शकों की ठंडी प्रतिक्रिया देख इसे बंद किया जा रहा है. जी हां, *जीवन साथी* के दर्शकों के लिए यह दुखदायी ख़बर है कि यह इसी सितंबर में बंद हो जाएगा. इसका आख़िरी एपिसोड चार सितंबर को प्रसारित होगा. इसके कलाकारों का कहना है कि वैसे तो आधिकारिक रूप से इसकी सूचना उन्हें नहीं दी गई है, लेकिन यह सच है. *कलर्स* चैनल के अधिकारी भी इस पर सार्वजनिक रूप से बोलने को तैयार नहीं हैं, लेकिन दबी ज़ुबान में इसकी पुष्टि कर रहे हैं. वैसे रियलिटी शो के पीछे मची चूहा-दौड़ में शामिल चैनल वालों का हाल इन दिनों देखने लायक है. यूं तो कलर्स पर *टैलेंट हंट* जैसा रियलिटी शो पहले से ही चल रहा है, लेकिन बताया जा रहा है कि *जीवन साथी* वाले समय पर एक और रियलिटी शो शुरू हो सकता है.

सारेगामा का बदलेगा अंदाज़

ज़ी टीवी का लोकप्रिय रियलिटी शो-सारेगामापा लिटिल चैंप-ख़त्म होते ही *सारेगामा* नए रंग-रूप में फिर शुरू हो जाएगा. लेकिन वह शो बच्चों का नहीं होगा. उसमें पति-पत्नी की जोड़ी बनाई जाएगी. लेकिन उससे पहले इस समय चल रहे *लिटिल चैंप* में ट्विस्ट आ गया है. कुल 12 प्रतियोगियों में जब छह ही बचे रह गए थे, तो लग रहा था कि शो जल्द ही ख़त्म हो जाएगा. प्रतिभागियों को भी अपनी मंज़िल बहुत क़रीब नज़र आ रही थी. लेकिन वे कितने ग़लत थे, यह पता चलते ही उनके होश ठिकाने लग गए हैं. दरअसल पिछले दिनों चार बच्चों की वाइल्ड कार्ड से हुई एंट्री ने इस शो में खलबली मचा दी है. लोग तरह-तरह की बात करने लगे हैं. जो चार बच्चे आए हैं, उनमें मथुरा का रहने वाला हेमंत बृजवासी भी है, जो एक बार शो से आउट हो चुका था. बाक़ी तीन में से एक ज़ीटीवी-बांग्ला पर लिटिल चैंप जीतने वाला राहुल दत्ता है, वहीं वे दो लड़कियां भी हैं जो पहले इस शो में शामिल होने से अंतिम पलों में वंचित रह गई थीं. ये हैं सृष्टि भंडारी और प्रतीक्षा श्रीवास्तव. बताया जा रहा है कि चैंपियन बनने की राह में इस तरह आई अचानक बाधाओं से पुराने सभी छह बच्चों के अभिभावक बहुत दुखी हैं.

सल्लू मियां में है दम

कई रियलिटी शो आए और गए, लेकिन सलमान ख़ान का *दस का दम* तो वाकई दमदार निकला. ऐसा हो भी क्यों नहीं, आख़िर सलमान ख़ुद जो इतनी मेहनत करते हैं. शो को दिलचस्प बनाने के लिए उन्होंने फिल्मी हस्तियों के संग आम आदमी का जो घालमेल किया है, वह क़ाबिल-ए-तारीफ़ है. इसे प्रसारित करने वाले चैनल-सोनी-की टीआरपी भी काफी बढ़ी. *दस का दम* की लोकप्रियता को देख चैनल वालों ने इसे एक्सटेंशन दे दिया है. पहले जहां इसे 29 अगस्त को ख़त्म करने की योजना थी, वहीं अब यह 24 अक्टूबर तक चलेगा. हालांकि पिछले दिनों संजय दत्त के साथ जैकी श्राफ को लाना सलमान के लिए परेशानी का कारण ज़रूर बन गया था. कहते हैं कि जैकी ने पर्दे के पीछे पूरी यूनिट को बहुत सताया. सबसे गाली-गलौज कर रहे जग्गू दादा को किसी तरह क़ाबू में किया जा सका और वह शो निपटाया गया. उधर पिछले दिनों शो में आईं फराह ख़ान की एक टिप्पणी से नाराज़ होकर एक दर्शक ने पुलिस में शिकायत दर्ज़ कराई है. फराह ने मर्दों को कुत्ता कहते हुए कहा था कि वे वफादार नहीं होते. बहरहाल, यह सचमुच *विचित्र किंतु सत्य* जैसा मामला है कि *दस का दम* की टीआरपी इसी चैनल के दूसरे रियलिटी शो-*इस जंगल से मुझे बचाओ*-से आज भी अधिक है.

तीर एक निशाने दो

एक ही परिवार में जब रिश्ते कई तरह के बन जाते हैं, तो उन्हें निभाना कितना कठिन हो जाता है, यह कोई दीपिका पादुकोण से पूछे. पिछले दिनों उनके सामने जब हालात कुछ ऐसे ही बन गए, तो उन्होंने जिस समझदारी का परिचय दिया, वह कुछ लोगों के लिए वाकई सीखने वाला रहा. ख़ास कर करीना कपूर के लिए. अब यह कहने की ज़रूरत नहीं कि करीना और दीपिका के बीच व्यावसायिक रिश्ते तो अपनी जगह हैं ही. लेकिन उससे अलग कुछ ख़ास रिश्ते भी हैं. जैसे, करीना रिश्ते में रणवीर कपूर की बहन हैं. बहरहाल, बात यह है कि पिछले दिनों जब दीपिका की नई फिल्म-*लव आज कल*-का दिल्ली में विशेष शो रखा गया, तो वहां करीना भी मौजूद थीं. उन्हें होना भी चाहिए था, क्योंकि उनके मित्र सैफ अली ख़ान इस फिल्म के न सिर्फ़ हीरो हैं बल्कि वह इसके निर्माता भी हैं. वह सैफ के साथ फिल्म देखने पहुंचीं, तो दीपिका के साथ पहुंचे ऋषि कपूर. ऐसे में दीपिका के सामने धर्मसंकट खड़ा हो गया कि वह अपने हीरो और प्रोड्यूसर की मित्र को भाव दें या रणवीर के पिता को. दीपिका ने करीना को किनारे कर ऋषि कपूर के साथ बैठ एक तीर से दो निशाने साध लिए. एक तो करीना को भाव न देकर अपना मैसेज पहुंचा दिया, दूसरे उन चर्चाओं पर विराम भी लगा दिया जिसके मुताबिक रणवीर से रिश्ते को लेकर उनके माता-पिता दीपिका से ख़ुश नहीं हैं. इतना ही नहीं, रणवीर के पिता यानी ऋषि कपूर भी दीपिका के साथ जिस तरह घुल-मिल कर बात कर रहे थे, उससे भी पता चल रहा था कि प्रेमपथ पर दीपिका भटकी नहीं हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

सयानी सयाली

वैसे तो हीरोइनों को साउथ से कुछ अधिक लगाव हमेशा से रहा है. हो भी क्यों न, आख़िर साउथ की फिल्में उनके डूबते करियर को तिनके का सहारा जो देता है. लेकिन इधर कुछ अधिक ही बढ़ गया है. इसमें नया नाम जुड़ा है सयाली भगत का. यूं तो सयाली भगत ने अपने करियर की शुरुआत मॉडलिंग से की थी. जब वहां थोड़ा-बहुत नाम हो गया, तो बॉलीवुड का रुख़ कर लिया. *द ट्रेन* नाम की फिल्म से बॉलीवुड में करियर भी शुरू करना चाहा, लेकिन बात बनी नहीं. करियर की ट्रेन चलने के साथ ही पटरी से उतर गई. फ़िलहाल तो वह मधुर भंडारकर की फिल्म *जेल* में काम कर रही हैं, लेकिन इसमें उनका ऐसा कोई काम नहीं है जो करियर में कोई मुकाम दिला सके. लिहाज़ा, समझदारी दिखाते हुए वह इन दिनों कई फिल्मों में व्यस्त हो गई हैं. बॉलीवुड से उलट साउथ में सेट पर माहौल अमूमन पारिवारिक-सा रहता है, जिससे अभिनेत्रियों के लिए काम करना काफी आसान हो जाता है. सयाली की नज़र में जब तक मीडिया और मार्केट में नाम न हो, तब तक अच्छा काम भी नहीं मिलता. ऐसे में शरीफ़ अभिनेत्रियों के लिए साउथ का बाज़ार कहीं अधिक उपयुक्त साबित होता है. दूसरे, साउथ के फिल्मकारों का रुख़ भी काफी पेशेवर होता है. यानी साउथ की यात्रा उन्होंने एक रणनीति के तहत की है. लक्ष्य तो आज भी वही है-बॉलीवुड.

कृपया अपने सबस्क्रिप्शन चेक अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के नाम पर अपने नाम और पूरे पते के साथ यहां भेजें : (गैनन) के-2, दूसरी मंज़िल, चौधरी बिल्डिंग, मिडिल सर्किल, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली -110001

वार्षिक शुल्क :1000 रु.